



धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय

चेतना की पत्रिका

अंक : ७०

आश्विन-अग्रहण

विक्रमाब्द : २०६१

अक्टूबर-दिसम्बर, २००५ ई०

सम्पादक - मण्डल

प्रो० काशीनाथ मिश्र

महन्त उद्भवदासजी

डा० श्रीरंजन सूरिदेव

आचार्य किशोर कुणाल

प्रधान सम्पादक

भवनाथ झा

महावीर मन्दिर प्रकाशन

के लिए

प्रो० काशीनाथ मिश्र

द्वारा प्रकाशित

तथा

सर्चलाइट प्रेस में मुद्रित

पत्र-सम्पर्क:

धर्मायण,

पाणिनि-परिसर,

बुद्ध-मार्ग,

पटना-८००००१

दूरभाष - ०६१२-२२०७७२५

E-mail : mahavirmandir@Sify.com

मूल्य : दस रुपये

धर्मायण

विषयसूची

☞ रामकाव्य की वर्तमान धारा

– विद्यावाचपति डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव

☞ श्री अरविन्द और वेदान्त – प्रो० श्री कान्त प्रसून

☞ धर्म और साधन-शुद्धि – डा० रामजी सिंह

☞ चण्डीस्तोत्रम् पृथ्वीधराचार्यविरचितम्

☞ श्रीदुर्गासप्तशती की भूमिका – डॉ. शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी

☞ हमारे जीवन-मूल्य – डी० आर० ब्रह्मचारी

☞ शक्तिपुंज स्वामी विवेकानन्द – प्रो० रामाश्रय प्रसाद सिंह

☞ अबहिं मातु मैं जाऊँ लवाई – डॉ० कामाख्या चरण सिंह

☞ डॉ० राजेन्द्र प्रसाद और उनकी अंतिम इच्छा 'कृष्णार्पणमस्तु'

– डॉ० एस० एन० पी० सिन्हा

☞ रामतापिन्युपनिषद् में श्रीराम का दार्शनिक स्वरूप

☞ व्रत-परिचय

☞ मालाबन्ध

☞ पुराण में वृक्षारोपण की महिमा

☞ विद्यापति के भोलेनाथ – प० भवनाथ झा

पौराणिक सन्दर्भ में दीपावली

दीपावली सम्पूर्ण भारत वर्ष में श्रद्धा एवं विश्वास के साथ मनाया जानेवाला प्रमुख पर्व है। इस दिन के साथ कई कथाएँ एवं ऐतिहासिक घटनाएँ जुड़ी हुई हैं। कहा गया है कि इसी दिन श्रीराम चौदह वर्षों के बाद अयोध्या लौटे थे। जैन परम्परा के अनुसार इसी दिन भगवान् महावीर का निर्वाण पावापुरी में हुआ था। इसकी स्मृति में इस दिन नव-वर्षारम्भ माना गया है। गुजरात में भी सांस्कृतिक रूप से यह दिन वर्षारम्भ के रूप में मनाया जाता है। व्यवसाय-जगत् में भी दीपावली के दिन से नवीन वित्तीय वर्ष प्रारम्भ करने की परम्परा आज भी विद्यमान है।

सिक्ख-परम्परा में भी दीपावली पूरी श्रद्धा के साथ धूम-धाम से मनायी जाती है। परम्परानुसार गुरु हरिगोविन्द सिंह को मुगल बादशाह जहाँगीर ने ग्वालियर के दुर्ग में नज़रबंद कर लिया था; किन्तु सूफी सन्त मियाँ मीर के उपदेश के प्रभाव से जहाँगीर ने गुरु हरिगोविन्द सिंह के साथ बंदी बनाये गये सभी अन्य राजाओं को भी छोड़ देने पर सहमत हो गया। इसके लिए बादशाह ने एक प्रक्रिया अपनायी कि जो राजा गुरुजी के अंगरखे का कोई भी भाग पकड़ लेंगे, इन्हें मुक्त कर दिया जायेगा। इस दिन गुरु ने ५२ कलगियों वाला अंगरखा पहना। इतने बंदी गुरु का अंगरखा पकड़कर मुक्त होकर किले से बाहर आ गये और दीपावली के दिन अमृतसर पहुँचे। लोगों के हर्षोल्लास की सीमा नहीं रही। दोगुने उत्साह से हरिमन्दिर में दीपावली का पर्व मनाया गया। इस घटना के बाद सिक्ख परम्परा में दीपावली के इस प्रकाश-पर्व में सोने में भी सुगन्धि आ गयी।

पुराणों की परम्परा में भी दीपावली के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ मिलती हैं। यहाँ पुराणों के उपलब्ध मुम्बई संस्करण में प्राप्त कुछ कथाएँ तथा माहात्म्य संकलित हैं। इन कथाओं के अतिरिक्त भी दीपावली के सम्बन्ध में सामग्री मिलने की प्रचुर सम्भावना है। इसके माहात्म्य का वर्णन पद्म-पुराण के उत्तर खण्ड के १२१ एवं १२२ में विस्तार से किया गया है। १२१वें अध्याय के अनुसार कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष में एकादशी से अमावास्या तक दीप जलाने का विशेष उल्लेख किया गया है। इन पाँच दिनों में भी अन्तिम दिन को वहाँ विशेष महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसके माहात्म्य में इसे पितृकर्म मानते हुए कहा गया है कि स्वर्ग में पितर इस दीप-दान से प्रसन्न होते हैं—

पितरश्चैव वाञ्छन्ति सदा पितृगणैर्वृतः।

भविष्यति कुलेऽस्माकं पितृभक्तः सुपुत्रकः।।२७।।

कार्तिके दीपदानेन यस्तोषयति केशवम्।

घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः।।२८।।

ज्वलते यस्य सेनानीरश्वमेधेन तस्य किम्।

तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः कृतं तीर्थावगाहनम्।।२९।।

यहाँ आगे कहा गया है कि एकादशी की रात किसी व्यक्ति ने भगवान् विष्णु के आगे दीप जला दिया था। रात में वह दीप जब बुझने लगा तो एक चूहा उसकी वाती रातभर उकसाता रहा। इस पुण्य से वह चूहा अगले जन्म में मनुष्य का शरीर धारण कर परम पद पा गया। एक व्याध भी चतुर्दशी की रात भगवान् शिव की पूजा कर परम-पद प्राप्त कर लिया। एक अन्य माहात्म्य के अनुसार एक वैश्य कुल की स्त्री थी, जो एक चाण्डाल के घर काम करती थी। उस चाण्डाल द्वारा जलाये दीप को वह रातभर उकसाती रही, जिसके कारण अगले जन्म में वह लीलावती बनकर स्वर्ग चली गयी। एक ग्वाला भी अमावस्या की रात में भगवान् विष्णु की पूजा का दर्शन कर बार बार जय जयकार कर महाराज बना।

इन माहात्म्यों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि इन दिनों सूर्यास्त होने पर रात्रि में घर, गोशाला, देवालय, श्मशान, तालाव, नदी आदि सभी स्थानों पर घी, तिल का तेल आदि से दीप जलाना चाहिए। इससे दीप जलानेवाले के ऐसे पितर, जिन्होंने पापाचरण किया था या जिनका श्राद्धकर्म उचित ढंग से नहीं हुआ वे भी इस दीपदान के पुण्य से मुक्त हो जाते हैं—

पापिनः पितरो ये च ये च लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।

तेऽपि यान्ति परां मुक्तिं दीपदानस्य पुण्यतः।।३७।।

इसी स्थल पर अगले १२२वें अध्याय में दीपावली के दिन का विस्तृत वर्णन किया गया है। कार्तिकेय के प्रश्न पर भगवान् शंकर कहते हैं कि कार्तिक मास की कृष्णपक्ष की त्रयोदशी तिथि को अपने घर के वाहर यमदीप जलाना चाहिए। इससे अपमृत्यु का निवारण होता है। यहाँ दीप जलाने का मन्त्र भी उल्लिखित है—

मृत्युना पाशहस्तेन कालेन भार्यया सह।

त्रयोदशीदीपदानात् सूर्यजः प्रीयतामिति।।

इस दिन प्रातःकाल में स्नान करने का विशेष महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इस स्नान के समय अपामार्ग, तुंबी, कट्फल, वाहल, इन चार वनस्पतियों को हाथ में सिर के ऊपर लेकर घुमाने का विधान किया गया है। इसके बाद तर्पण के क्रम में निम्नलिखित मन्त्रों से यमराज को जल देने का विधान किया गया है—

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।

वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च।।१२।।

औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।

वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्त्राय वै नमः।।१३।।

इसके बाद सन्ध्या के समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि के मन्दिरों में दीप जलाना चाहिए। इस दिन पितरों की प्रसन्नता के लिए पार्वण करने का भी विधान यहाँ किया गया है।

रात्रि के अन्त में स्त्रियों द्वारा भगवान् विष्णु के उठने से पूर्व अर्थात् प्रबोधिनी एकादशी से ग्यारह

दिन पूर्व ही लक्ष्मी को जगा देने का भी विधान यहाँ किया गया है और कहा गया कि इन स्त्रियों के घर में एक वर्ष पर्यन्त लक्ष्मी का वास होता है। यहाँ एक कथा का भी उल्लेख हुआ है जिसके अनुसार ब्राह्मणों के द्वारा अभय पाकर भी असुरगण भगवान् विष्णु से डरते थे। इसी दीपावली की रात उन्होंने देखा कि विष्णु सोये हुए हैं और लक्ष्मी कमल पर विरामान हैं, तब वे सब लक्ष्मी की स्तुति इस प्रकार करने लगे –

त्वं ज्योतिः श्रीरविश्वन्द्रो विद्युत्सौवर्णतारकः ।

सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीपज्योतिः स्थिता तु या ।।२३।।

या लक्ष्मीर्दिवसे पुण्ये दीपावल्यां च भूतले ।

गवां गोष्ठे तु कार्तिक्यां सा लक्ष्मीर्वरदा मम ।।२४।।

इस प्रकार स्तुति करने से असुरगण भी धन-धान्य से सम्पन्न हो गये। इसलिए रात्रि के अन्तिम प्रहर में जब घर के पुरुष सोये हुए हों स्त्रियों को तुरही और नगाड़ा बजाकर लक्ष्मी को जगाना चाहिए तथा दरिद्रा को घर से बाहर भगाना चाहिए –

एवं गते निशीथे तु जने निद्रार्द्धलोचने ।

तावन्नारनारीभिस्तूर्यडिण्डिमवादनैः ।।

निष्कास्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीश्च गृहाङ्गणात् ।।२५।।

दीपावली के सम्बन्ध में एक अन्य विवरण भविष्यपुराण के उत्तरखण्ड के १४०वें अध्याय में भी उपलब्ध होता है। यहाँ श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर के संवाद के रूप में यह विवरण दिया गया है। इस स्थल के अनुसार जब वामनावतार भगवान् विष्णु ने राजा बलि को पाताल लोक भेज दिया तब पुनः उन्होंने एक अहोरात्र राजा बलि के उपभोग के लिए छोड़ दिया। यही वह अहोरात्र है। इस दिन अपराह्न में मार्गपाली की कुश की प्रतिमा बना कर खम्भे या वृक्ष से बाँध देना चाहिए तथा हाथी आदि की पूजा करनी चाहिए। रात्रि होने पर दैत्यराज बलि की पूजा का भी विधान यहाँ किया गया है। इस के लिए पाँच रंगों से राजा बलि तथा महारानी रत्नावली का चित्र बनाना चाहिए। साथ ही उनके पर्यटन असित, कूष्माण्ड, वाण, जंघोरु, और मुर का भी चित्र बनाना चाहिए। राजा को चाहिए कि वे दो हाथ वाले राजा बलि की पूजा अर्चना श्रद्धापूर्वक करें। यहाँ राजा बलि द्वारा दिये गये दान का स्मरण किया गया है तथा उन्हें श्रेष्ठ विष्णुभक्त माना गया है। पूजा के बाद रात्रि-जागरण का भी विधान किया गया है। सामान्य जनता द्वारा भी शय्या पर चावल से बलि की प्रतिमा बनाकर पूजा करने का उल्लेख किया गया है। इस दिन दान करने का प्रशस्त माहात्म्य गाया गया है।

इस दीपावली के दिन में कौमुदी महोत्सव का उल्लेख यहाँ प्राप्त होता है। कौमुदी शब्द को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि कु अर्थात् पृथ्वी पर इस दिन सभी लोग मुदित अर्थात् प्रसन्न रहते हैं अतः इसे कौमुदी कहा गया है –

कुशब्देन मही ज्ञेया मुदी हर्षे ततः परम् ।६१।।

धातुज्ञैर्नैगमज्ञैश्च तेनैषा कौमुदी स्मृता ।

कौ मोदन्ते जनाः यस्यां नानाभावै परस्पराः ।।६२।।

हृष्टास्तुष्टाः सुखायत्तास्तेनैषा कौमुदी स्मृता ।

यहाँ कहा गया है कि इस दिन हमें प्रसन्न रहना चाहिए। इस दिन हमारी जैसी मानसिकता रहेगी वही स्थिति वर्षभर रहेगी—

यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर ।

हर्षदिन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति हि ।।६८।।

इसके अन्त में कौमुदी-महोत्सव अथवा दीप्रव दीपावली की स्तुति काव्यात्मक रूप में इसकी तुलना रामायण से करते हुए कहा गया है

उपशमितमेघनादं प्रज्वलितदशाननं रमितरामम् ।

रामायणमिव सुभगं दीपदिनं हरतु वो दुरितम् ।।

अर्थात् रामायण में मेघनाद के अन्त का प्रसंग है तो दीपावली में मेघ का गर्जन शान्त रहता है। रामायण में दशानन का वध का वर्णन है तो दीपावली में दशो दिशाओं का मुख प्रकाशित रहता है। रामायण दशरथनन्दन श्रीराम से शोभित है तो दीपावली अपनी रमणीयता के कारण शोभित है। इस प्रकार रामायण के समान यह दीप का पर्व भी हमारे पापों का नाश करे।

दीपोत्सवे जनितसर्वजनप्रमोदां

कुर्वन्ति ये सुमनसो बलिराजपूजाम् ।

दानोपभोगसुखवृद्धिशताकुलानां

हर्षेण वर्षमिहपार्थिव याति तेषाम् ।।७३।।

गोवर्द्धनपूजा

पद्मपुराण के इसी स्थल पर दीपावली के अगले दिन गोवर्द्धनपर्वत तथा गायों की पूजा का विधान किया गया है। इस दिन गायों को विभिन्न प्रकार से सजा कर इनकी स्तुति करने का विधान किया गया है। इस दिन गायों को दुहने और बैलों को जोतने का निषेध भी किया गया है। स्तुति मन्त्र इस प्रकार हैं—

गोवर्द्धनधराधार गोकुलत्राणकारक ।।३०।।

विष्णुबाहुकृतोच्छायगवां कोटिप्रदो भव ।

या लक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ।।३१।।

घृतं वहति यज्ञार्थं मम पापं व्यपोहतु ।

अग्रतः सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।

गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।।३२।।

स्कन्द-महापुराण के वैष्णव खण्ड के कार्तिक मास माहात्म्य के ६ वें अध्याय में दीपोत्सव का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। इस कथा के अनुसार जब भगवान् विष्णु ने वामनावतार में राजा बलि को बाँधकर पाताल लोक भेजने का उपक्रम करने लगे तब राजा वि को उन्होंने वरदान माँगने के लिए कहा। बलि ने कहा कि मेरे राज्य को अतिक्रान्त करने के लिए आपको तीन पग की आवश्यकता हुई; अतः मुझे आप वर्ष में तीन दिनों का राज्य प्रदान करें। भगवान् ने इस प्रार्थना की स्वीकृति दे दी—

महाराजो बलिः प्रोक्तस्तुष्टेन हरिणा तथा । ४६ ।
 वरं याचस्व भद्रं ते यद्यन्मनसि वर्तते ।
 इति विष्णु वचः श्रुत्वा बलिर्वचनमब्रवीत् । ५० । ।
 आत्मार्थं किं याचनीयं सर्वं दत्तं मया तथा ।
 लोकार्थं याचयिष्यामि शक्तश्चेद्देहि तच्च मे । ५१ । ।
 तिभिः पदैस्त्रिदिवसैः सा चाक्रान्ता यतस्त्वया । ५२ । ।
 तस्माद्भूमितले राज्यमस्तु घसत्रये हरे ।

पद्म-पुराण में जहाँ केवल दीपावली के दिन ही बलि-राज्य की चर्चा है, वहाँ स्कन्दपुराण के इस स्थल पर तीन दिन का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार दीपावली एवं इससे दो दिन पूर्व से ही दीप जलाने का विधान किया गया है। शेष विधान एवं कथा पद्म-पुराण के समान हैं।

लक्ष्मी की स्तुति भी त्वं ज्योतिः श्रीरविश्वन्द्रो इत्यादि यहाँ भी उद्धृत है। यहाँ इस दिन के माहात्म्य के सम्बन्ध में एक अन्य कथा दी गयी है कि राजा बलि ने देवताओं के साथ लक्ष्मी को भी कैद कर रखा था। भगवान् विष्णु ने इसी दिन लक्ष्मी के साथ सभी देवताओं को कारामुक्त किया। इसके बाद लक्ष्मी पुनः क्षीरसागर चली गयी। अतः इस स्थल पर पूजा विधि में एक शय्या की स्थापना कर उस पर लक्ष्मी एवं भगवान् विष्णु की पूजा का विधान किया गया है –

अस्मिन्नहनि सर्वेऽपि विष्णुना मोचिता पुरा ।
 बलिकारागृहाद्देवाः लक्ष्मीश्चापि विमोचिताः । ।
 लक्ष्म्याः सार्द्धं ततो देवाः जग्मुः क्षीरोदधौ पुनः ।
 प्रसुप्ताः बहुकालं ते सुखं तस्मान्मुनीश्वराः । ।

परम्परा में दीपावली की रात्रि को सुखरात्रि भी कहा जाता है। प्रतीत होता है कि लक्ष्मी इस रात्रि में मुक्त होकर सुखपूर्वक निवास करती हैं; अतः यह नामकरण प्रचलित हुआ होगा।

इस दिन हर प्रकार से प्रसन्न रहने के लिए कहा गया है; किन्तु पाँच त्याज्य कर्मों की सूची भी दी गयी है –

जीवहिंसा सुरापानमगम्यागमनं तथा ।
 चौर्य विश्वासघातश्च पञ्चैतानि मुनीश्वराः ।
 बलिराज्ये तु नरकद्वाराण्युक्तानि संत्यजेत् । ।

अर्थात् जीवहिंसा, मद्यपान, पत्नी के अतिरिक्त किसी भी कुल-स्त्री से यौन-सम्बन्ध, चोरी एवं विश्वासघात ओ पाँच कर्म नरक के द्वार हैं, इन्हें छोड़ देना चाहिए।

रामकाव्य की वर्तमान धारा

विद्यावाचपति डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव

रामकाव्य भारतीय काव्य-साहित्य की रत्नमाला का मणिमेरु है। रामकाव्य की व्यापकता न केवल समग्र भारतीय गरिमा को आयत्त करती है, अपितु वह विश्वजनीन प्रतिष्ठा की अर्जन-क्षमता से सम्पन्न है। रामकाव्य की ततोऽधिक व्यापकता का कारण उसकी प्रबन्ध

रामकाव्य का कारण उसकी प्रबन्ध-रत्नमाला का मणिमेरु है। रामकाव्य की व्यापकता न केवल समग्र भारतीय गरिमा को आयत्त करती है, अपितु वह विश्वजनीन प्रतिष्ठा की अर्जन-क्षमता से सम्पन्न है। रामकाव्य की ततोऽधिक व्यापकता का कारण उसकी प्रबन्ध-रत्नमाला का मणिमेरु है। रामकाव्य की व्यापकता न केवल समग्र भारतीय गरिमा को आयत्त करती है, अपितु वह विश्वजनीन प्रतिष्ठा की अर्जन-क्षमता से सम्पन्न है। रामकाव्य की ततोऽधिक व्यापकता का कारण उसकी प्रबन्ध-

रामकाव्य का कारण उसकी प्रबन्ध-रत्नमाला का मणिमेरु है। रामकाव्य की व्यापकता न केवल समग्र भारतीय गरिमा को आयत्त करती है, अपितु वह विश्वजनीन प्रतिष्ठा की अर्जन-क्षमता से सम्पन्न है। रामकाव्य की ततोऽधिक व्यापकता का कारण उसकी प्रबन्ध-

इतिहासकारों ने उपजीव्य काव्य का सन्दर्भ-काव्य कहा है। सन्दर्भ-काव्य इस रूप में कि समग्र विश्व में रामकाव्य रचने की परम्परा वाल्मीकि-रामायण पर ही उपजीवित या इससे सन्दर्भित है। वाल्मीकि-कृत रामायण के अतिरिक्त भी अनेक रामायण संस्कृत में उपलब्ध होती हैं। संस्कृत-साहित्य के इतिहासकार मानते हैं कि रामायण की रचना ईसा के पाँच सौ वर्ष पूर्व हुई। वाल्मीकि-कृत रामायण में वर्णित रामकथा इतनी प्रभावकारी हुई कि भारतीय और भारतीयतर भाषाओं तथा वैष्णव सम्प्रदाय से इतर जैन और बौद्ध

सम्प्रदायों में भी रामकाव्य की लम्बी रचना-परम्परा बन गई।

भारत में देशों में भी रामकाव्य की वेगवती धारा प्रवाहित हुई। चीन, खोतान, तिब्बत, मंगोलिया, जापान, इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, थाईलैण्ड, श्रीलंका, मलयेशिया, वर्मा, रूस, मॉरिशस, फीजी, सूरीनाम, अफ्रीका, नेपाल आदि देशों में

रामकाव्य का कारण उसकी प्रबन्ध-रत्नमाला का मणिमेरु है। रामकाव्य की व्यापकता न केवल समग्र भारतीय गरिमा को आयत्त करती है, अपितु वह विश्वजनीन प्रतिष्ठा की अर्जन-क्षमता से सम्पन्न है। रामकाव्य की ततोऽधिक व्यापकता का कारण उसकी प्रबन्ध-

रामकाव्य का कारण उसकी प्रबन्ध-रत्नमाला का मणिमेरु है। रामकाव्य की व्यापकता न केवल समग्र भारतीय गरिमा को आयत्त करती है, अपितु वह विश्वजनीन प्रतिष्ठा की अर्जन-क्षमता से सम्पन्न है। रामकाव्य की ततोऽधिक व्यापकता का कारण उसकी प्रबन्ध-

जो रामकाव्य लिखे गये, उनपर स्थानीय तत्वों की छाप अवश्य है, या वे अपने लेखकों की धरती के परिवेश के निकट जरूर है, किन्तु सभी रचनाकारों ने वाल्मीकि के निकट रहने का प्रयास किया है।

भारत में ही हिन्दीतर प्रदेशों में रामकाव्य की सृष्टि परम्परा दृष्टिगत होती है। उदाहरणार्थ, असमिया, ओड़िया, बँगाली, पंजाबी, मराठी, गुजराती, उर्दू, सिन्धी, तेलुगु, कन्नड़, तमिल, मलयालम आदि भाषाओं के रामकाव्य द्रष्टव्य हैं। एक रूसी विद्वान डॉ० ए० सेंकेविच ने लिखा है कि 'रामकाव्य विश्व-साहित्य की उन कृतियों में है, जो विभिन्न जातियों के लोगों को समीप लाती है, संहार और

— सं०

अमानुषिकता का विरोध करती है और सामाजिक विषमता को अस्वीकार करती है।' रामायण केवल रामकाव्य ही नहीं, मानवीय मूल्यों से भरपूर ऐसा महाकाव्य है, जो मनुष्य को श्रेष्ठ प्राणी बनने की प्रेरणा देता है। रामकाव्य में विर्णत सत्यपथ भारत का सत्यपथ है, भारतीय ज्ञान को प्राप्त करने का पथ है। रामकाव्य सक्रिय मानवतावाद का आह्वान करता है। यही कारण है कि उसका महत्व राष्ट्रीय संस्कृति की सीमाओं बँधा न रहकर रूप ग्रहण करता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार रामायण जैसे महाकाव्य से हिन्दी-काव्य की प्रौढ़ता के युग का आरम्भ हुआ तथा हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में रामभक्ति का परमोज्ज्वल प्रकाश गोस्वामी तुलसीदास के रामकाव्य के द्वारा ही स्फुटित हुआ। हिन्दी में रामकाव्य की जो वर्तमान धारा प्रवाहित है, वह प्रायः तुलसी के रामकाव्य 'रामचरितमानस' से ही उपजीवित है।

रामकाव्य की प्राचीन और अर्वाचीन परम्परा में रचे गये ग्रन्थों में राम के विविध रूप वर्णित हैं। वाल्मीकि ने अपने काव्यनायक राम को नर-रूप में चिह्नित किया है और अपने रामकाव्य रामायण में वर्ण्य विषय के रूप में नररूप राम के ही चरित्र की अवतारणा की है। नारद ने राम को विष्णु नहीं कहा है, वरन् उन्हें वीर्य में विष्णु के सदृश बताया है। यहाँ तक कि दशरथ, कौशल्या आदि पात्र भी राम को व्यवहारतः मनुष्य ही मानते हैं। इनके अतिरिक्त वसिष्ठ, विश्वामित्र जनक, भरद्वाज, अत्रि, सुतीक्ष्ण, शरभंग, अगस्त्य आदि ऋषियों ने भी राम को विष्णु का अवतार मानकर उनका स्वागत-सत्कार किया है, इसका कहीं भी कोई भी उल्लेख नहीं प्राप्त होता। यही बात हनुमान्, सुग्रीव, बलि, विभीषण आदि पात्रों के विषय में कही जा सकती है। शबरी भी

श्रीराम को 'पुरुषर्षभ' अर्थात् पुरुषश्रेष्ठ कहती है। प्रजाजन भी राम को 'नरोत्तम' मानकर उनसे मिलते थे। वाल्मीकि-रामायण के उल्लेखानुसार स्वयं राम भी अपने-आपको मनुष्य ही समझते हैं। राम, वाल्मीकि के अनुसार सर्व-सद्गुण-सम्पन्न तथा आदर्श पुरुषोत्तम थे।

राम में मानवीय दुर्बलता भी थी। दुर्बलता मानवमात्र की सहचरी होती है। फिर भी, महान् वह हो जाता है, जो अपनी दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करता है। पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर राम का मूर्च्छित हो जाना और मूर्च्छा दूर होने पर शोकाकुल हो जाना, इसी प्रकार स्त्री-हठ के सामने झुक जाना और असम्भव कांचनमृग के वध के लिए प्रस्थान करना और फिर शक्ति से आहत अनुज लक्ष्मण को देखकर विलाप करना और प्राण-त्याग का विचार करना आदि उनकी मानवीय दुर्बलता के ही उल्लेखनीय पक्ष हैं। नर-रूप राम को नारायण के महिमामय पद पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय तो गोस्वामी तुलसीदास को है। वह लिखते भी हैं- 'कृपासिन्धु नर-रूप हरी।'

रसिक-सम्प्रदाय के रामकाव्य की परम्परा में राम को 'लीलापुरुषोत्तम ब्रह्म' कहा गया है। राम की, मधुर भाव से उपासना करनेवाले भक्तों को 'रसिक' कहा गया है। इसी प्रकार, 'अद्भुतरामायण' की कथा में मुख्य पात्र राम और सीता को शाक्त सम्प्रदाय से प्रभावित सिद्ध किया गया है।

बौद्ध जातक-कथाओं में रामकाव्य या राम के कथाकाव्य से सन्दर्भित तीन जातक उपलब्ध होते हैं- 'दशरथजातक', 'अनामकजातक' एवं 'दशरथकहानम्'। इनके अनुसार, गौतम बुद्ध अपने पूर्वभव (पूर्वजन्म) में राम-रूप में उत्पन्न हुए थे। 'दशरथजातक' के अनुसार, वह वाराणसी

के राजा दशरथ के पुत्र थे। वह वनवास के लिए हिमालय पर गये। सीता उनकी बहन थी, जो बाद में उनकी पट्टमहिषी हो गई। इस जातक में राम की धीरोदात्तता, पिता की आज्ञा की पालनकारिता जैसे गुणों पर प्रकाश-निक्षेप हुआ है। केवल 'अनामकजातक' में उनकी पत्नी के नग द्वारा अपहृत होने की घटना का वर्णन हुआ है। इन जातकों के अनुसार, राम कटुता और हिंसा को टालने के लिए स्वयं वन में जाकर निवास करने लगे थे।

जैन रामकाव्य में राम को 'पद्म' कहा गया है। जैन लेखकों द्वारा राम या पद्म की कथा को अपने दर्शन, साधना और उपासना के सिद्धान्तों से अनुप्राणित बनाकर उपन्यस्त किया गया है। जैन परम्परा के रामकाव्य के तीन उत्तम निदर्शन हैं- विमलसूरि-कृत 'पउमरियं' (प्रथम-द्वितीय शती ई०), रविषेणाचार्य-कृत संस्कृत 'पद्मपुराण' (सप्तम शती ई०) एवं स्वयम्भू-कृत अपभ्रंश 'पउमचरिउ' (नवम शती ई०)। जैन धर्मावलम्बी राम इक्ष्वाकु-कुल में उत्पन्न हुए थे। उनका जन्म बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ के युग में हुआ था। भारत के हित के विचार से राम स्वयं वनवास स्वीकार कर सीता और लक्ष्मण के साथ दक्षिण गये थे। जैन रामकाव्य के नायक राम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदर्श पुरुष थे।

रामकाव्य की वर्तमान धारा के आकलन से पूर्व मध्यकालीन रामकाव्य का आकलन करना उचित होगा। हिन्दी-काव्य साहित्य में आरम्भ से ही राम के लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों की प्रतिष्ठा है। लौकिक रूप में वह मानवजीवन का आदर्श रूप उपस्थित करते हैं, तो अलौकिक रूप में वह विष्णु के अवतार के अतिरिक्त पूर्ण परात्पर परब्रह्म हैं, जिनकी मानवी लीला का गुणगान भक्त कवि करते हैं। राम के लीलागान में

अधिकांशतः उनके दुष्टदमनकारी लोकरंजनकारी मर्यादापुरुषोत्तम रूप का चित्रण हुआ है। इसी के समानान्तर रामभक्ति में माधुर्यभावना का विकास हुआ और मध्यकाल में रसिक-सम्प्रदाय की भक्ति से परिपूर्ण विपुल साहित्य की रचना हुई। इस प्रकार, मध्यकालीन रामकाव्य में राम को लौकिक-अलौकिक दोनों रूपों में चित्रित किया गया है।

हिन्दी के आरम्भिक साहित्य में राम क्षत्रियत्व का आदर्श उपस्थित करते हैं। 'पृथ्वीराजरासो' में राम के लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों की स्वीकृति मिलती है। दशावतार-वर्णन के अन्तर्गत अड़तीस छन्दों में रामावतार का वर्णन उपलब्ध है। लौकिक रूप में रासो-साहित्य की मूल भावना के अनुरूप राम वीरता के आदर्श हैं।

मध्यकाल में स्वामी रामानन्द के आर्विभाव से राम-भक्ति को व्यापक आयाम प्राप्त हुआ। मध्यकालीन रामकाव्य में राम सगुणोपासकों तथा निर्गुणोपासकों में समान रूप से मान्य हुए। निर्गुणोपासकों में राम निर्गुण, निर्विकार होकर भी उनकी भावना के आश्रय हैं। अव्यक्त 'राम की बहुरिया' कबीर 'राजा राम भरतार' के आगमन पर मंगलाचार का आयोजन करते हैं। कबीर के अतिरिक्त अन्य अनेक सन्तों ने भी राम-चरित्र का भावात्मक और प्रतीकात्मक मन्तव्य स्पष्ट किया है, जिनमें गरीबदास, रज्जब, सुन्दरदास, यारी साहब, जगजीवन साहब, दरियासाहब पलटूदास, देवकीनन्दन साहब, रघुनाथदास, रामसनेही, नवनिधि आदि प्रमुखता से उल्लेख्य हैं।

परवर्ती सन्तों ने तो राम के पौराणिक सगुण को स्वीकार कर लिया, जिनमें मलूकदास, जगजीवनदास, शिवनारायणदास आदि प्रमुख हैं।

इस प्रकार, राम के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को, संस्कृत-साहित्य की परम्परा से हिन्दी के सगुणोपासक कवियों ने आत्मसात् कर चित्रित किया।

राम से सन्दर्भित मध्यकालीन सभी कवि और काव्य तुलसी की प्रतिभा के प्रखर प्रकाश के समक्ष मद्धिम पड़ जाते हैं। तुलसी संस्कृत की लौकिक तथा आध्यात्मिक रामकाव्य-परम्परा के योग्यतम उत्तराधिकारी हैं। संस्कृत साहित्य तक आते-जाते राम विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकृत हो चुके थे। तुलसी ने और आगे बढ़कर 'अध्यात्म-रामायण' आदि की परम्परा से भी ऊपर राम को उन पूर्ण परात्पर परब्रह्म के रूप में चित्रित किया, जो धर्म के उत्थान और अधर्म के नाश के हेतु अवतरित होते हैं।

जब-जब होइ धरम के हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब-तब प्रभु धरि मनुज सरीरा।
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा॥

राम के लौकिक-अलौकिक दोनों रूपों की स्वीकृति आचार्य केशवदास की 'रामचन्द्रिका' में है। रीतिकालीन बढ़ती हुई शृंगारी प्रवृत्ति का रूप सेनापति के रामकाव्य में स्पष्ट है। यद्यपि वहाँ भी राम को विष्णु का अवतार ही माना गया है। राम का यही रूप ब्रजराज-कृत 'रामरस-लहरी' में उपलब्ध है। ब्रजराज के राम तुलसी के राम की भाँति ही चिन्मय परमात्मा तथा आदिप्रभु हैं। हिन्दी में, रसिक-सम्प्रदाय के रामकाव्य के प्रणेताओं में सर्वश्री उग्रदास, नाभादास, महात्मा बाल अली, महात्मा कृपानिवास, युगलनारायण 'हेमलता', महात्मा बनादास, रसरंगमणि, ज्ञान अली सहचरि आदि प्रमुख हैं। इनकी रचनाओं में राम के नित्यरमण रूप का वर्णन है।

हिन्दी में रामकाव्य की वर्तमान धारा का सूत्रपात गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' से हुआ, यह ऐतिहासिक सत्य है। यथार्थ के धरातल पर अवस्थित वाल्मीकि की रामकथा 'मानस' में आदर्श रामकथा बन गई। रीतिकाल में दार्शनिकता, शाक्त सम्प्रदाय एवं पुष्टिमार्गीय कृष्णकथा के गहरे प्रभाव से रामकाव्य में रसिकता का समावेश हुआ, परन्तु रसिकता का यह प्रभाव मर्यादावादी रामकाव्य 'रामचरितमानस' के बढ़ते प्रचार-प्रसार एवं आस्था के फलस्वरूप अवरुद्ध हो गया। आधुनिक काल में राजनीतिक-सामाजिक आन्दोलनों, तिलक के कर्मयोग और गान्धी-विचारधारा रामकाव्य आर्य-संस्कृति का प्रचार-काव्य बन गया। इस प्रकार, रामकाव्य की वर्तमान धारा में पर्याप्त अन्तर आ गया।

वर्तमान या आधुनिक रामकाव्य के प्रणेताओं के समक्ष रामकाव्य की भूमिका उपजीव्य या प्रेरक की रही। यथार्थ चित्रण की दृष्टि से 'वाल्मीकिरामायण' तथा भक्ति एवं आदर्श की दृष्टि से 'रामचरितमानस' आधार-ग्रन्थ माना गया। इसके अतिरिक्त संस्कृत-प्राकृत काव्यों, नाटकों, बँगला रामायण, मेघनाद-वध और रवीन्द्र के निबन्ध 'काव्य उपेक्षिता' आदि को परम्परा और यहाँ तक कि 'कामायनी' की परम्परा को भी ग्रहण किया गया। सर्वथा नवीन परम्परा में निराला, पन्त, मैथिलीशरण गुप्त, नरेश मेहता, शिवमंगलसिंह 'सुमन', भारतभूषण अग्रवाल आदि के रामकाव्यों की गणना की जा सकती है।

वर्तमान धारा के रामकाव्यों की कथा के विचारों और दृष्टिकोणों में मूलतः एकता है, जिसके माध्यम से भारतीय संस्कृति की सफल अभिव्यक्ति हुई है। इनके रचयिताओं ने युगीन समस्याओं का समाधान त्रेतायुग की रामकथा में ढूँढ़ने का प्रयास किया है। अतः, कई घटना-प्रसंग

युगीन परिवेश में प्रस्तुत किये गये हैं। जैसे- नारी समस्या को लेकर अहल्या-प्रसंग, सीता-परित्याग-प्रसंग आदि। वर्ण-व्यवस्था की समस्या के लिए निपाद, शबरी, शम्बूक आदि के प्रसंग। मानवतावादी विचारधारा के फलस्वरूप निन्दनीय तथा अनार्य पात्रों से सन्दर्भित घटनाओं के भी तथ्य प्रस्तुत किये गये।

वर्तमान धारा के रामकाव्य में प्रयोग या परिवर्तन का विशेष कारण कवि की अपनी चिन्तन-दृष्टि रही है। इन्होंने रामकाव्य की आधिकारिक कथा के समान रामकथा की उपेक्षित एवं गौण घटनाओं के उद्घाटन में भी रुचि ली है। इस माध्यम से रामकथा के अन्य पात्रों से सन्दर्भित घटनाओं को भी रामकाव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो सका है। ऐसा करने के लिए कवियों ने कथानक का मौलिक संयोजन किया है। समस्त रामकथा के वर्णन की जगह उसे संवाद-शैली में प्रस्तुत किया गया है, जैसे 'साकेत' में बालकाण्ड की कथा उर्मिला, अरण्यकाण्ड की कथा शत्रुघ्न तथा किष्किन्धा एवं लंकाकाण्ड की कथा हनुमान् द्वारा कहलायी गई है। गुप्तजी ने वर्ण्य वस्तु के विन्यास में नाटकीय पद्धति का प्रयोग किया है। कथा को दो सर्गों में दृश्यात्मक रूप में उपन्यस्त किया गया है और कतिपय सर्गों में दृश्य, परिवर्तन की मौलिक प्रणाली की आयोजना की है। गुप्तजी की इस पद्धति का अनुसरण 'सीता', 'साकेतसन्त', 'माण्डवी' आदि काव्यों में भी हुआ है।

राम के उत्तर-चरित से सन्दर्भित कथाओं में पूर्वकालिक घटना-शृंखलाओं को जोड़ने के लिए स्मृति-खण्डों, चित्रों, आभासों, दूरदर्शन आदि का प्रयोग किया गया है। वहीं घटना की बहुलता है तो कहीं घटनाओं का विस्तार। इसके विपरीत निराला के 'राम की शक्तिपूजा' जैसे भाष्य-गर्भ

काव्य में घटना की विरलता और 'संशय की एक रात' जैसे घटना-विहीन अन्तरात में रचना वर्तमान रामकाव्य की धारा के कथा-विधान के अभिनव प्रयोग हैं। छायावाद के बाद प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी रामकाव्यों में प्रारम्भिक रामकाव्यों जैसी भावुकता के समावेश की अपेक्षा प्रतीक और चिन्तन की प्रधानता है। उनमें घटनाओं की बौद्धिक व्याख्या ही अधिक है। उदाहरणार्थ, पन्तजी की रामकथा वर्गसंघर्ष को रूपायित करता है, तो पोद्दार रामावतार अरुणजी की रामकथा 'अरुणरामायण' में मूल्य-प्रतीकों को महत्त्व दिया गया है। राजेश्वरी अग्रवाल की 'सीता-समाधि' की कथा भी प्राचीन मिथकों की काव्यमय रूपक-कथा है। इसमें स्वाधीनता-आन्दोलन, स्वाधीनता-प्राप्ति तथा उसकी उत्तरवर्ती परिस्थितियों को त्रेतायुग की रामकथा के माध्यम से सार्थक अभिव्यक्ति मिली है।

रामकाव्य की वर्तमान चिन्तन-धारा का मुख्य वैचारिक पक्ष यह है कि रावण साम्राज्यवादी, भौतिकवादी, मानवता का उत्पीड़क एवं तान्त्रिक है, किन्तु यह भ्रातृप्रेमी और सीता का आदर्श प्रेमी है। रामकाव्य की वर्तमान धारा में रावण के कृष्णपक्ष के अतिरिक्त 'रावण का विश्वोभ', 'दशानन', 'अग्निपथ', 'अन्तर्दर्शन' आदि रामकाव्यों में इस दुर्दान्त चरित्र का उज्ज्वल पक्ष भी अंकित किया गया है। माइकेल मधुसूदन दत्त के समान हरदयालुजी ने तो ब्रजभाषा के रावण-महाकाव्य में रावण को नायकत्व भी प्रदान किया है। पारम्परिक रामकथा का परम्परेतर पद्धति से प्रस्तवण ही रामकाव्य की वर्तमान धारा का वैशिष्ट्य है।

भारतभूषण अग्रवाल ने अपने 'अग्निलीक' रामकाव्य में कथानक को एक नई दिशा दी है। जैसे परित्यक्ता सीता राज्यश्री से मदान्ध राम से प्रतिशोध लेना चाहती है। वह राम के साथ समस्त

रघुवंशियों की भर्त्सना करती है। अन्त में राम की ही भाँति राम के परित्याग की घोषणा करती हुई पृथ्वी में अन्तर्लीन हो जाती है।

मैथिलीशरण गुप्त एवं बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने प्रायः परम्परागत पद्धति पर ही उर्मिला का चित्रण प्रस्तुत किया है। उसमें कला, सौन्दर्य, स्वाभिमान, क्षात्र तेज, बौद्धिकता, प्रणय, अनुराग त्याग आदि सद्गुणों का विनियोग किया है। रामकाव्य की वर्तमान धारा में भी कौशल्या का वात्सल्य परम्परागत ही है। सुमित्रा के क्षत्राणी रूप में स्नेह, दृढता विचारशीलता आदि गुणों का समावेश किया गया है। कविवर केदारनाथ मिश्र प्रभातजी द्वारा अपनी काव्यकृति 'कैकेयी' में कैकेयी के परम्परागत चरित्र में मनोवैज्ञानिकता एवं राष्ट्रीयता का विनिवेश कर उसके उज्वल पक्ष को उभारा गया है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में तथा प्रभातजी ने 'कैकेयी' में कैकेयी के अन्तर्मन में होनेवाले संघर्ष का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। इनका आधुनिक चिन्तन है कि राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि में कैकेयी ही राक्षसों के विनाश का हेतु है।

रामकाव्य की वर्तमान धारा में सीता के चरित्र में भी कई नये आयाम उपस्थित किये गये हैं। सीता-चरित्र के अन्तर्गत उसकी दाम्पत्य-निष्ठा में राष्ट्रीयता, आत्मनिर्भरता, समाजसेवा, लोकाराधना आदि का विनिवेश हुआ है। काव्य की दृष्टि से वह नायिका है, सांस्कृतिक दृष्टि से कृषि की अधिष्ठात्री देवी है। इसी प्रकार, भक्ति-दर्शन की दृष्टि से वह राम की आद्याशक्ति, राष्ट्रीय दृष्टि से भारतमाता, भारतलक्ष्मी तथा अपहृता स्वतन्त्रता

है और फिर पारिवारिक दृष्टि से वह आदर्श पत्नी, बहू, भाभी एवं माता है।

हिन्दी में रामकाव्य की वर्तमान धारा आज भी अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित है। राम की पूरी कथा को लेकर या उसके एकल पात्रों के चरित्र-चित्रण के आधार आज भी अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित है। राम की पूरी कथा को लेकर या उसके एकल पात्रों के चरित्र-चित्रण के आधार पर एक से एक रामकाव्यों की रचना हो रही है। बिहार की उपभाषाओं में भी रामकाव्यों का प्रणयन अबाध गति से हो रहा है। अंगिका में कविवर जगदीश पाठक 'मधुकर' ने अपनी 'मन्थरा' काव्य में मन्थरा के हीन-चरित्र के उदात्तीकरण का सफल प्रयास किया है। हिन्दी के वरिष्ठ कवि गोवर्द्धनप्रसाद 'सदय' ने 'राम आख्यान' नाम के रामकाव्य की रचना द्वारा रामभक्ति को राष्ट्रीय आधार प्रदान करने का महनीय काव्यप्रयास किया है। आज जापान से आयातित हाइकु छन्द ने भारतीय काव्यक्षेत्र में अपनी मौलिक अस्मिता आयत्त की है। इसी छन्द में रामसागर सिंह ने 'श्रीहाइकु रामायण' जैसे प्रबन्ध-काव्य की सृष्टि की है, जिसमें रामकथा की पारम्परिक मौलिकता को अक्षुण्ण रखते हुए चरित्रों के चित्रण में नव्यता का कलात्मक विनियोग किया गया है। इस प्रकार, रामकाव्य की वर्तमान धारा मानव-जीवन के श्रेय-प्रेय की संवाहिका के रूप में निरन्तर प्रवाहशील है।

३७, भा. स्टेट बैंक ऑफिसर्स कॉलोनी
काली-मन्दिर मार्ग, हनुमाननगर

श्री अरविन्द और वेदान्त

प्रो० श्री कान्त प्रसून।

वेदान्त, वेद यानि ज्ञान का अन्त बताता है किन्तु इस वेद के अन्त का ज्ञान या वेद के पश्चात् का अन्तिम ज्ञान माना जाना चाहिए। इसका अर्थ सम्पूर्ण ज्ञान का अन्त नहीं हो सकता। शरीर, मस्तिष्क और बुद्धि का पता हमें होता है, थोड़ा आभास आत्मा का भी हो सकता है किन्तु हम अपनी असली आत्मा को नहीं पहचान पाते। वेदान्त हमारे स्वत्व की यथार्थ प्रकृति कराता है, उसका दर्शन कराता है।

जीवन एक अनुभव-धारा है, ज्ञान की धारा और निरन्तर प्रवाहित धारा है। जबतक यह ज्ञान होता

रहता है- हम जीवित माने जा सकते हैं। उस ज्ञान-धारा के रुकने के साथ ही जीवन समाप्त हो जाता है। हम बाह्य-जगत् से अपना संबन्ध गवाँ देते हैं और निर्जीव हो जाते हैं। वह अजर अमर आत्मा मुक्त हो जाती है। कुछ विचार धाराओं के अनुसार वह दूसरा जन्म ग्रहण करती है। हमारे शरीर में रहने के कारण या रहने के पश्चात् या रहते हुए वह आत्मा कैसी हो गयी होती है? यह हम जानते क्योंकि हम जीवन भर इस आत्मा की अनदेखी करते हैं, उसका निरादर करते हैं। तिरस्कृत, त्यागे हुए रहते हैं। भौतिकता की आन्धी दौड़ में

सुख-सुविधायें जुटाते भागते चले जाते हैं और अपनी ही एक शाश्वत सत्ता को नजरअन्दाज करते जाते हैं।

वेदान्त का दर्शन उसी आत्मा, उसी वैयक्तिकता को देखने, समझने, सवारने का दर्शन है। अपनी व्यक्तिगत आत्मा को पूर्णता तक पहुँचाने की कला और विज्ञान है। वह पूर्णरूपेण व्यक्ति और वैयक्तिकता का विकास है।

महर्षि अरविन्द विरचित सावित्री महाकाव्य दार्शनिक गम्भीरता के साथ साथ अंग्रेजी भाषा में होने से अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पठित होने के कारण प्रसिद्ध हो चुका है। महाकवि ने भारतीय वेदान्त दर्शन की धारा को विश्वस्तर पर प्रतिष्ठापित करने का महनीय कार्य किया है। उनकी रचना में गुम्फित वेदान्त दर्शन के स्वरूप का दिग्दर्शन प्रस्तुत है अंग्रेजी साहित्य के अध्येता प्रो० श्री कान्त प्रसून की लेखनी से।

— सं०

यही वेदान्त श्री अरविन्द का दर्शन है। सम्पूर्ण श्री अरविन्द चिन्तन और साहित्य में

किसी में किसी न किसी रूप में उसी आत्मा की वही पूर्णता पाने का आग्रह, निवेदन और उपाय है। श्री अरविन्द के अनुसार व्यक्तिगत तैयारी सांसारिक झंझटों से सफलता पूर्वक निपटने का मार्ग है। केवल मानव को ही अपने लिए 'सब कुछ' और उस 'सब कुछ' के लिए एक मार्ग खोजना होता है। शेष सभी मानवेतर का कर्म और मार्ग संपूर्णतया निर्देशित है। उनके सभी नियम पूर्व निर्धारित हैं। केवल मनुष्य का ही संवधान है। नियम-कानून है जिसे वह बार-बार तोड़ता जाता है। शायद बुद्धि का यही एक कार्य उसके

पास बचा है। उसका भी स्वाभाव है किन्तु उसका आवरण अधिकतर साधन और स्वभाव के विपरीत होता है। उसमें सभी मानवेतर के गुण-अवगुण होते हैं। फलतः वह एक सा नहीं होता, एक सा नहीं रहता। परिणाम स्वरूप वह चिंतित, दुःखी और असफल होता है।

वेदान्त मनुष्य को ज्ञान देकर यह आशा करता है कि विभिन्न स्थितियों, परिस्थितियों में मानव अपने सही कर्म की पहचान और चुनाव कर सकेगा। वेदान्त कर्म निर्धारण में ही सहायक नहीं, कर्म का शुद्ध-सही तरीका भी तबता है। यह हमारी भौतिक आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति का मार्ग है और मार्ग सुझाता है। यही धर्म का, कर्म का, सत्कर्म का शाश्वत सिद्धान्त है, यह आत्मा का विज्ञान है और आत्मा की प्रणाली का ज्ञान है। यह अन्तर्दृष्टि देता है, अन्तः का मार्ग खोलता है और अपनी आत्मा से एकात्म होना सरल बनता है।

वेदान्त जो यह एकात्म-बोध देता है उससे व्यक्तिगत दिव्यता की प्राप्ति आसान हो जाती है। कोई भी अपने व्यक्तित्व से अपनी दैविक आत्मा की पहचान कर सकता है। तब अपने मूल को पहचाना ही नहीं जा सकता उससे मिला भी जा सकता है। इस तरह वेदान्त योग का कार्य करता है। 'स्व' को 'आत्म' से जोड़ता है। 'स्व-आत्मा' जागृत होती है, अन्तः-चेतना मिलती है। व्यक्ति-व्यक्तित्व निखर जाता है, श्रेष्ठ हो जाता है, दैविक हो जाता है, महामानव हो जाता है। जीवन का मौलिक ज्ञान ही नहीं, मूल-जीवन का ही ज्ञान नहीं, जीवन के मूल का भी ज्ञान दे देता है। व्यक्ति अनन्तता से एक होता है, शाश्वतता पा जाता है।

वेदान्त का यही दर्शन, यह सिद्धान्त श्री अरविन्द का मूल सिद्धान्त है। 'सावित्री' के बुक एक कैंटों श्री में 'द' योग ऑफ द किंग या 'द योग ऑफ द सोल्स रिलीज में ज्यादा और शेष संपूर्ण सावित्री में इसके व्यवहारिक रूप को दिग्दर्शित किया गया है। इसमें आत्मा उच्च आत्मा से और जीवन पराजीवन से मिलने के लिए बेचैन रहता है-

His soul breaks out to join the Over soul,

His life is overruled by that superlife.

Savitri : Book I : 24

और, जब वह मिलन हो जाता है तब सभी सत्य एक सत्य में समाहित हो जाते हैं, There all the truths unite in a single Truth. वहाँ चेतना और दृष्टि बढ़ने लगती है, वे वृहत्तर घेरे में ऊँची ड़ान भरते हैं, भौतिकता की शासन-सीमा से आगे निकल जाते हैं और उस क्षेत्र में पहुँच जाते हैं जहाँ जीवन के स्थान पर केवल विचार होते हैं-

Ever his consciousness and vision grew;

They took an ampler sweep, a loftier flight;

He passed the border marked for Matter's rule

And passed the zone where thought replaces life.

Savitri : Book I : 31

वैदिक साहित्य में जीवन-निर्जीव सभी में एक भाव का, ए-से बोध का दिग्दर्शन किया गया है। वेद के देवी-देवता प्रकृति के ही विभिन्न स्वरूपों के प्रतिरूप हैं। हमारा जड़ ही प्रकृति में है और प्रकृति से हमारा एकात्म भाव है। नियम पर चलती हुई प्रकृति मशीन नहीं हो पाती। उसका स्वरूप आकर्षक और उसके कार्य दैविक है। प्रकृति में ईश्वर प्राप्त होते हैं और ईश्वर में प्रकृति परितृप्त होती है- God found in

Nature, Nature fulfilled in God. इसलिए सभी को उच्चतर नियमों का पालन करना चाहिए। हमारे शरीर को चाहिए कि वह अमरत्व की लपट को धारण करे-

All haere must learn to obey a higher law,
Our body's calls must hold the Immortal's flame.

Savitri : Book I : 35

जैसे एक शिल्पी एक पत्थर को काट-छाँट एक देवी का आकार उकरे देता है- As a sculptor Chisels a deity out of stone हम अपनी अज्ञानता के बाहरी खोल को हटाकर अपने में से ही एक प्रकाशमान 'स्व की सर्जना कर सकते हैं। अज्ञानता से जब आत्मा को मुक्ति मिल जायेगी तब शरीर और मस्तिष्क में आध्यात्मिक परिवर्तन होंगे। बौद्धिक शक्ति का विकास होगा और वह सार्वभौम से एक हो जायेगी - He grew one with a covert universe. सर्वव्यापी शक्तियाँ उसकी शक्ति से जुट जायेंगी- The universal strengths were linkded with his. वह उस ऊँचाई पर पहुँच जायेगा जहाँ से अनेक ऊँचाईयाँ दृष्टिगोचर होने लगेंगी। मानवीय आत्मा की सपाट दैहिक स्थिति से महाकाव्यात्मक उठान की चढ़ाई की, महत्ती स्वत्व के पहचान की, शाश्वत प्रकाश के झलक की यह महज भूमिका है-

The earth's uplook to a remote unknown
Is a preface of the epic climb
Of human soul from its flat eUrthly state
To the discovery of a greater self
And the far gleam of Un eternal light.

Savitri : Book I : 48

हम केवल मृत्योन्मुख नगण्य नहीं है,

हमारी अमर व्यापकता भुला दी गई है जिसे हमें अपने अन्दर ही खोजना है। हमारे स्वत्व की चौड़ाई माप से परे है-

A death bound littleness is not all we Ure;
Immortal our forgotten vastness
Await discovery in our summit selves;
Unmeasured breadths Und depths of being are ours.

अगर हम प्रयत्नरत रहें तब एक व्यापक चेतना अपना द्वार खोलेगी और समयातीत यश की एक किरण आध्यात्मिक चुप्पी को तोड़ती हुई हमारे बन्दी चमकीले तत्व से मिलेगी और अपना विशाल श्वेत चिह्न हमारेजवीन पर छोड़ जायेगी-

A wider consciousness opens then its doors;
Invading form spiritual slences
A ray of the timeless Glory stoops awhile
To commune with our seized illumined caly
And leaves its huge white stamp upon our lives.

Ibid : 48

किन्तु वह सब पर्दे में है, सूक्ष्म है, रहस्यात्मक है। एक अनुभूतिपूर्ण हृदय चाहिए जो घूमकर खुद को देख सके, एक आध्यात्मिक दृष्टि की शक्ति चाहिए वरना भटक जाने की सम्भावनाएँ है।

यह घना जंगल जहाँ कुछ भी समतल या निश्चित नहीं है, जहाँ हमारे अस्तित्व पर ही प्रश्नवाचक चिह्न लगा है, हमारा जीवन एक अस्पष्ट प्रयोग दिखता है, हमारी आत्मा अज्ञानता के अन्धकार में यदा-कदा चमकने वाला प्रकाश लगती है, धरती एक क्रूर दुर्घटना है, मृत्यु के जाल में हम भाग्यवश जीते हैं, जो भी हम जानते

है वह संशययुक्त केवल अनुमान है, अनजाने से ही हम अनजाने की ओर बढ़ते हैं out of unknown we move to the unknown. ऐसे में हम वह विश्वास चाहते हैं जो पराजय के बाद भी बचा सके। प्रेम की वह मिठास चाहते हैं जिसे मृत्यु का भान नहीं। हम शाश्वत सत्य की चमक चाहते हैं-

A faith she craves that can survive defeat,
The sweetness of a love that knows not death,
The raeciance of a truth for ever sure.

Ibid : 51

किन्तु जो बाह्य है और तात्कालिक है, वही हमारा क्षेत्र है। जो मृत अतीत है वही हमारी पृष्ठभूमि और सहायक है। हमारे मस्तिष्क में हमारी आत्मा बन्दिनी है। हम अपने कर्मों के गुलाम हैं। हम अपनी दृष्टि को ज्ञान के सूर्य तक नहीं पहुँचा पाते-

The outward and immediate are our field,
The dead past is our background and support,
Mind keeps the soul prisoner, we are slave to our acts
We cannot free our gaze to reach wisdom's sun.

हम जीव हैं, जीवन तो वह ब्रह्म The Absolute है। वही सबके अस्तित्व का नियामक है, नियंत्रक और नियन्ता है।

जो ब्रह्म है वही सर्वशक्तिमान है, पूर्ण है, अकेला है, वही अन्तरिक्ष है, वही व्योम है। वही एक से अनगिनत अनेक बनता है। वही सबमें विद्यमान है। वही समय भी है-

The Absoulute, the Perfect, the Alone
Has entered with his silence into space;
He has fashioned these countless persons of one

self;

He has built a million figures of his power;
He lives in all, who lived in his vast alone;
Space is himself and Time is only he.

Ibid : 67

वह हमें मानव-रूप देता है कि हम उसकी दैविक सत्ता तक उठ सकें That to his divine measure we might rise; और तब वह मनुष्य को देवत्व में ढाल देगा, हमारे सीमित मस्तिष्क को अपने सा असीमित कर देगा, क्षण को शाश्वतता से छू देगा, यही स्वर्ग पर धरती का कर्ज है और यही आपसी कर्जदारी मानव को ब्रह्म से बाँधती है। हमें उसके स्वभाव को ग्रहण करना है जैसे कि वह हमें ग्रहण करता है। हम उसी ईश्वर की सन्तान हैं और हमें उसी की तरह बनना है। अपनी मनुष्यता में ही देवत्व तक विकसित होना है-

This transfiguration is earth's due to heaven;
A mutual debt binds man to the supreme;
His nature we must put on as he put ours;
We are sons of God and must be even as he;
His human portion, we must grow divine.

Ibid

उसी श्रेष्ठता और उच्चता तक पहुँचने का माध्यम है वेदान्त और अपनी आत्मा का यथेष्ट परिस्कार करते हुए वहाँ तक पहुँचने का मार्ग श्री अरविन्द भी बताते हैं। मानव जीवन का यही अंतिम लक्ष्य है।

T

सोलोमन काम्प्लेक्स,
मोतिहारी
८४५४०१

धर्म और साधन-शुद्धि

डा० रामजी सिंह

साध्य और साधन सापेक्षपद पद हैं किन्तु एक दूसरे पर निर्भर है या नहीं, यह विवाद का विषय है। कुछ लोग मानते हैं कि साध्य सही होना चाहिये, साधन चाहे जैसा भी हो। “अन्त भला तो सब भला।” साध्य का औचित्य ही साधन के औचित्य को निर्धारित करता है। जबकि दूसरी तरफ यह कहा जाता है कि जैसा साधन होगा, वैसा ही साध्य

होगा। यह कर्म-सिद्धान्त के भी अनुरूप दीखता है- **कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करहि सो तस फल चाखा।**

इ स स

लगता है कि साध्य और साधन केवल सापेक्ष ही नहीं बल्कि कार्य-कारण-सम्बन्ध से जुड़े हैं। इससे लगता है कि कारण के रूप में साधन और कार्य के रूप में साध्य है। जैसा बीज होगा, वैसा ही फल। बबूल के वृक्ष में आम नहीं फल सकता। उसी को सांख्य-दर्शन में सत्कार्यवाद कहा जाता है-

असत् करणात् उपादानग्रहणात्

शक्तस्य शक्यकरणात्, कारणभावाच्च सत्कार्यम्”॥

आधुनिक विज्ञान की भाषा में इसे कारणवाद (Law of caustion) कहा जाता है। इस दृष्टि से कारण जड़मूल है। कार्य उसकी निष्पत्ति है। नील को हजार शिल्पी भी पीला नहीं बना सकता- “नहि नीलं सहस्रेण शिल्पिना पीतं कर्तुं शक्यते”। इसका निहितार्थ है कि अच्छे साधन से ही उष्छ साध्य की कल्पना की जा सकती है। बुरे साधनों

से अच्छाई की आशा तर्क संगत नहीं है। इसीलिये भगवान बुद्ध या महावीर ने अक्रोध से ही क्रोध को समाप्त करने की सलाह दी है- “अक्रोध

एक भिखारी किसी साहूकार के पास भीख माँगने के लिए गया। वह साहूकार गहनों की गिरवी रखने का काम करता था। वह अपनी दुकान पर गहने तौल रहा था। भिखारी ने ज्यों ही आवाज लगायी कि उसे गुस्सा आ गया। उस साहूकार ने आव न देखा ताव, झट एक गहना उठा कर उस भिखारी के सर पर मार बैठा और विफर पड़ा - ‘ जा भाग यहाँ से’। भिखारी दुविधा में पड़ गया कि यह गहना मुझे दिया जा रहा है!

यहाँ साधन और साध्य की शुद्धि का प्रश्न उठता है। साहूकार का साधन तो शुद्ध है; किन्तु साध्य ही अशुद्ध है। धर्म के लिए दोनों की शुद्धता चाहिए। इस विषय पर प्रस्तुत है एक विवेचन।

- सं०

“न जयेत् क्रोधम्”। जीतो अक्रोध से क्रोध साधु से असाधु को। कंजूसी दान से जीतो, सत्य से झूठवाद को। वैर से कदापि भी मिटते वैरे हैं नहीं। मैं भी से ही मिटे वैर, यही धर्म सनातन। (धम्म पद)

भौतिकवाद और सुखवाद के साथ मार्क्सवाद भी यह नहीं मानता है, शायद इसलिये कि मूल तो है अच्छे साध्य की प्राप्ति, अच्छा लक्ष्य, सुन्दर उद्देश्य। यदि प्रयोजन ही ठीक नहीं हो तो प्रवृत्ति भी नहीं हो सकती। मनु का वचन

है- “प्रयोजन मनु किदश्चन मन्दोऽपि न प्रवर्तते।।” इसीलिये यदि पूंजीवाद को मिटाकर साम्यवाद स्थापित करना है तो फिर उसके लिये जो भी साधन हो, अपनाना चाहिये। मुहावरा भी है कि साध्य की सफलता ही साधन की कसौटी है।

Nothing succeeds like success दूसरा तर्क यह भी है कि यदि प्रतिपक्षी नैतिक हो तो फिर नैतिक साधन अपनाया जा सकता है, लेकिन अनैतिक संस्था या व्यक्ति से संघर्ष में साधन-शुद्धिया केवल नैतिक साधनों के प्रति आग्रह रखना अव्यावहारिक तो है ही, हास्यापद भी है।

सच्चिदानन्द योगेश्वर कृष्ण ने तो लगता है साधन-शुद्ध की सीमाओं को महाभारत युद्ध में अनेकों बार तोड़े। चाहे वह भीष्म के वध का प्रश्न ही जहाँ उनकी संचरण से शिखंडी को सम्मुख खड़ा कर उन्हें शस्त्र-त्याग करने की स्थिति में उनपर बाणशर्मा की योजना थी, या प्रेरणाधार्य की आस हत्या के लिये अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो की प्रवंचना हुई, या कर्ण का कवच-कुण्डल हरण करना हो या शल्य का वध या योगमाया लगाकर बादलों से सूर्य को आच्छादित कर छल से जयद्रथ का वध या दुर्योधन को जंघा के नीचे गदा प्रहार की मंत्रणा आदि सबों के मूल में प्रवंचना, छल और असाधु है। इसके बचाव में एक तर्क तो यह है कि वे भगवान् थे, उनके कृत्य पर प्रश्न नहीं हो सकता। लेकिन मेरी समझ से यदि भगवान् का ही चरित्र ऐसा होगा तो हमलोगों को क्या प्रेरणा मिलेगी? दूसरा तर्क है कि -

धर्म संस्थापनाय सम्भवामि युगे-युगे।'

भगवान् का कार्य धर्म संस्थापना का है। इसी के लिये वे बार-बार अवतार लेते हैं -

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।”

इसका अर्थ हुआ कि भगवान् भी सत्य की रक्षा के लिए बड़ा से बड़ा छल, बड़ी से बड़ी अनीति, बड़ा से बड़ा अधर्म करने में सकुचाते नहीं।

तो हमारा धर्म संकट बढ़ जाता है और हमें लगता है कि बुद्ध, महावीर, ईसा और गाँधी के साधन-शुद्धि का विचार उनसे मेल तो नहीं खाता। तब क्या राम, कृष्ण आदि भी भौतिकवादी-चार्वाक सुखवादी चिन्तकों की तरह “साध्य को साधन की कसौटी” मानते हैं कहा जा सकता है कि ये सब अपवाद स्वरूप हैं। धर्म तो सत्य, प्रेम, दया और करुणा ही है। यदि हम अच्छे साध्य के लिये भी छल, बल आदि का प्रयोग करना नैतिक मान लेते हैं तो पहले तो हम कार्य-कारण के सिद्धान्त को खंडित करते हैं। जिसका वेद में भी दुहाई दी गयी है - “ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धान्तपसोध्यजायत।” सांख्य एवं वेदान्त का सत्कार्यवाद और मौजूदा विज्ञान का कार्य-कारणवाद खंडित होता है, साथ-साथ गलत एवं अनैतिक साधनों के प्रयोग करते रहने से हमारा संस्कार भी दुष्प्रभावित होता है। हमारे मानस पर केवल साध्य ही नहीं साधन का भी प्रभाव पड़ता है। इसीलिये भगवान् बुद्ध ने असांगिक मार्ग में “सम्यक् आजीविका” को उजागर किया है। न हम अपनी आनुवंशिकता से मुक्त हो सकते न हम अपने संस्कारों से मुक्त हो सकते। हम साधनों के प्रभाव को जीवन से हटा नहीं सकते। क्योंकि साधन का साध्य से आन्तरिक एवं अन्तर्निहित संबन्ध है। इसीलिये समर्थन करता

है कि हृदय की प्रतिक्रिया होती है। यदि हम अशुद्ध कृत्य करेंगे तो उसकी प्रतिक्रिया भी हमें प्रभावित करेगी। इसीलिये गीता में “कर्मण्येवाधि कारस्ते मा फलेषु कदाचन” बताकर केवल कर्म पर जोर दिया गया है। काँट ने भी “कर्तव्य कर्तव्य के लिये” कह कर अपने शुभ कार्य एवं पवित्र साधन पर जोर दिया है।

इसीलिये मनुस्मृति ने धर्म पर आरूढ़ रहने को सर्वोपरि मानते हुए कहा है - “धन या समृद्धि यदि हम अशुद्ध साधन से प्राप्त कर भी लेते हैं तो हमारा अन्ततः सर्वनाश हो जाता है।” - (मनुस्मृति ४/१६६)

इसीलिये धर्म नाश हो जाने पर सर्वनाश स्वाभाविक है। (शांति पर्व, १०८ अध्याय) यह सुनकर सुखद आश्चर्य है कि प्रसिद्ध मार्क्सवादी विद्वान प्रो० शिशकिन ने मार्क्स के नाम पर साध्य के सर्वथा औचित्य को गलत बताते हुए कहा है कि हमलोग अनैतिक साधनों के व्यवहार को उचित नहीं मानते। मार्क्सवाद पर यह आरोप भी गलत है कि किसी भी तरह से सफलता चाहते हैं।

यद्यपि हम-साधनों के चुनाव में नैतिक-अनैतिक, सत्य-झूठ, हिंसा-अहिंसा जैसे मूल्यों का ध्यान नहीं रखेंगे तो हमारे लिये साधन गौण हो जाएगा और साध्य ही परम पुरुषार्थ होगा। फिर तो समाज में नैतिक अराजकता को कोई रोक नहीं सकता। जो लोग साधन-शुद्धि के सिद्धान्त को अव्यवहारिक समझते हैं। फिर तो अपने साध्य की प्राप्ति के लिए बर्बरता, नृशंसता, अमानवीयता सब कुछ क्षम्य होगा। हिंसा और प्रवंचना से प्राप्त सफलता के उदर में हिंसा और प्रवंचना रहेगी जो मानव-सभ्यता का सर्वनाश

करेगी। असल में “अन्त भला तो सब भला” साधन और साध्य को पृथक् तत्त्व मानता है। हम यह भूल जाते हैं कि साधन-साध्य को प्रभावित करता है। अतः सत्य एवं प्रेम के बल भगवान बुद्ध, ईसा, गाँधी के विचार आज भी मूल्यवान समझे जाते हैं। सत्य एवं अहिंसा जैसे साधनों के उपयोग का अर्थ यह नहीं कि वह अन्याय, अनीति का प्रतिकार नहीं करे। भगवान बुद्ध ने उस समय प्रचलित अन्ध विश्वास, विषमतामूलक जाति प्रथा तथा पशु बलि का प्रचंड विरोध कर पुराहितवाद के कोप भाजन बने। ईसा मसीह सूदखोर यदूहियों के खिलाफ विद्रोह का झंडा उठाकर शहादत दी। सुकरात ने अन्ध विश्वास एवं रूढ़िवाद का विरोध किया और गाँधी ने तो दक्षिण अफ्रीका से लेकर चंपारण, खेड़ा, बारडोली, अहमदाबाद एवं सम्पूर्ण भारत में अहिंसक प्रतिकार को आगे बढ़ाया।

इतिहास साक्षी है कि अन्याय के प्रतिकार के तरीके में भी विकास होता गया पहले सशस्त्र प्रतिकार का रास्ता था, हाँ प्रहलाद, ध्रुव, सुकरात, ईसा आदि ने निःशस्त्र प्रतिकार किया जो व्यक्तिगत था। आणविक युग में सशस्त्र प्रतिकार का अर्थ आणविक युद्ध है, अतः आज शस्त्र से वीरता चली गयी है एवं युद्ध का गतितत्व समाप्त हो गया है। अतः आज अन्याय प्रतिकार के लिये सत्य और अहिंसा, नैतिकता और शुद्ध साधन ही कारगर है।

अवतार की अवधारणा भी विकसित होती गयी। राम के हाथों में धनुष-बाण थे। श्रीकृष्ण के हाथ में सुदर्शन चक्र, जिसका प्रयोग

महाभारत में भी नहीं किया गया। अन्य समय में तो उन की वंशी ही बजती रहती। बुद्धावतार को देखें, वहाँ कोई अशस्त्र-शस्त्र नहीं है। ईसा के हाथों में भी कोई शस्त्र नहीं। उसी तरह आज के युग में गलत साधन अपनाने से साध्य तो नहीं ही

हासिल होगा, यदि जरा सी गलती कर आणविक अस्त्र उठा लिया तो सृष्टि का ही सत्यानाश हो जायगा, अतः अच्छे साध्य के लिये अच्छा सा युग की भी आवश्यकता है।

भीखनपुर, भागलपुर

८१२००१

बोधकथा

भगवान् बुद्ध स्वर्ग में एक जलाशय के किनारे टहल रहे थे। जल में कमल खिले हुए थे। टहलते टहलते भगवान् तथागत ने स्फटिक के समान पारदर्शी उस सरोवर के जल में झाँका तो नीचे नरक का रक्तिम तड़ाग दिखाई पड़ा, जिसमें पापात्मा सब दुष्कर्म का फल भोग रहे थे। सहसा भगवान् की दृष्टि कान्दता नामक एक डाकू पर पड़ी, जो रह रह कर नरक की असह्य यातनाओं पर कराह उठता था। उसने न जाए कितने अबोध प्राणियों की हत्या की थी; पर इन दुष्कर्मों के साथ ही इसने एक बार एक मकड़ी की प्राणरक्षा भी की थी। घटना इस तरह हुई थी कि एक दिन जब कान्दता लूट की सफलता के मद में मस्त चला आ रहा था, तो उसने देखा कि एक मकड़ी ठीक उसके पैरों के नीचे कुचली जाने वाली है। किसी अज्ञात प्रेरणा से उसके चरण सहसा रुक गये और उस मकड़ी के प्राण सहसा बच गये। जीवदया के इस सुकृत्य का स्मरण आते ही करुणामय भगवान् तथागत का हृदय पसीज उठा। वे सोचने लगे कि इस नारकीय याता से इसे मुक्त किया जाय। इसी समय उनकी दृष्टि एक मकड़ी पर पड़ी जो पास के वृक्ष पर उज्वल जाल बुन रही थी। तथागत ने जाले का एक धागा लिया और उसे नरक के रक्त सरोवर में लटकाना प्रारम्भ किया। उधर नरक के घोर अन्धकार में कान्दता यातनाएँ भोग रहा था। सहसा उसकी दृष्टि ऊपर गयी तो उसने देखा कि एक प्रकाशमय तन्तु नीचे की ओर लटकती चली आ रही है। उसका मन प्रसन्न हो गया। उसने सोचा कि क्यों न मैं भगवान् की कृपा से प्राप्त इस तन्तु को पकड़कर ऊपर चढ़ जाऊँ, जिससे इस नारकीय यातना से मुक्ति मिले। साथ ही यदि सौभाग्य से इसका दूसरा छोर अगर स्वर्ग में हो तब तो सदा के लिए स्वर्ग ही पहुँच जाऊँगा। अतः अपनी पकड़ में आते ही उसने तन्तु को पकड़ लिया और हर्षोन्मत्त होकर ऊपर चढ़ने लगा; किन्तु अभ्यस्त होते हुए भी शरीर जर्जर होने के कारण वह थोड़ी ऊँचाई पार करते ही थक गया। वह सुस्ताने के लिए रुका। सहसा उसकी दृष्टि नीचे की ओर गयी तो उसने देखा कि नरक के और लोग भी उस तन्तु के सहारे ऊपर चढ़ रहे हैं। उसे यह बात रास नहीं आयी। वह गरज उठा – अरे पापियों यह भरे लिए लटकायी गयी है। तुमलोग इस पर क्यों चढ़ रहे हो। उतरो पापियों उतरो! नहीं तो मैं इसे काट डालूँगा।' कान्दता इतनी जोर से गरजने लगा कि उस झटका से वह तन्तु ऊपर से ही टूट गयी और सब के साथ कान्दता भी नरक में जा गिरा। तथागत की करुणा के इस अन्त को तड़ाग की मछलियाँ देखरहीं थीं। उसे प्रणाम करते हुए भगवान् से कहा – करुणामय देव! देख लिया न आपने मनुष्य की मन की प्रवृत्ति को! एक विकार दवता है तो दूसरा तुरत उभड़ पड़ता है। असंख्य मानव के इस विकार से आप कब तक लड़ेंगे? इससे त्राण आने का क्या उपाय है भगवन्!'

तथागत मन्द मन्द मुस्कुराये लगे और गम्भीर वाणी में कहा – 'मैंने इसका भी उपाय ढूँढ़ लिया है। केवल निःसंगता ही इन समस्याओं का निवारण कर सकती है। परम निःसंग ही परम बुद्ध है।

(जापान के महायानी त्रिपिटक की एक गाथा)

उत्तेजित हो उठी है। सुनामी लहरों और सागर के गर्भ में भूकम्प के भयंकर विस्फोट से हाल ही में हमने लाखों जानें गँवाई हैं। मानव की संकट पूर्ण स्थिति पर खेद प्रकट करते हुए अंग्रेजी-साहित्य का प्रख्यात कवि, महान् चिन्तक एवं श्रेष्ठ आलोचक टी० एस० इलियट ने बहुत पहले कहा था-

अनन्त आविष्कार, अनन्त प्रयोग
देते हैं ज्ञान गति का, स्थिरता का नहीं,
ज्ञान शब्दों का, पर अज्ञान उसी शब्द का,
हमारा सारा ज्ञान हमें लाता है समीप अज्ञानता के
हमारी सारी अज्ञानता हमें लाती है समीप मृत्यु के
किन्तु मृत्यु की समीपता कोई ईश्वर का सान्निध्य नहीं।
वह जीवन कहाँ जो हमने जीने में खा दिया?
वह विवेक कहाँ जो हमने ज्ञान में खो दिया?
वह ज्ञान कहाँ जो हमने सूचना में खो दिया?
स्वर्ग के चक्र ने इन बीस शताब्दियों में
कर दिया है हमें ईश्वर से दूर,
ला दिया है धूल के समीपतर।”

सचमुच भौतिकता से ओतप्रोत जीवन में आत्मा की शान्ति, हृदय की शान्ति और मन की शान्ति हमारी समझ से परे की वस्तु बन गई है। ऐसी स्थिति में श्रीमद्भागवत महापुराण का यह श्लोक हमारी आस्था को जगाता है, हमारे विश्वास को सुदृढ़ बल प्रदान करता है तथा आत्मा की शान्ति प्राप्त करने का गुर बतलाता है। परमात्मा-परमेश्वर से दूर रहकर जीवन में हम स्थायी सुख और हृदय की शान्ति नहीं प्राप्त कर सकते। जिसके हृदय में शान्ति न हो उसे कभी सच्चा सुख नहीं मिल सकता। गीता में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है- ‘अशान्तस्य कुतः सुखम्।’ अशान्त को सुख कहाँ? दायित्वहीन विलासिता एवं कामुकता को प्रलोभन-जाल में फँसे मानव-मीन

(मनुष्य रूपी मछली) को सच्ची सुख-शान्ति क्षणभंगुर पदार्थों से नहीं मिल सकती। उसे तो त्रिताप से बचाने वाले भगवान् की शीतल एवं सुखद चरणारविन्द की शाश्वत सुगन्धि से ही सच्ची शान्ति मिल सकती है। तभी तो महत्-तत्त्वादि देवों ने आगे कहा-

धातुर्यदस्मिन् भव ईश जीवा-
स्तापत्रयेणोपहता न शर्म।
आत्मल्लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रि-
च्छायां सविद्यामत आश्रयेम॥”

-श्रीभद्भागवत महापुराण-३.५.३६.

अर्थात् हे जगत्कर्ता! इस संसार में तापत्रय से व्याकुल रहने के कारण जीवों को जरा भी शान्ति नहीं मिलती। इसलिए भगवन्! हम आपके चरणों की ज्ञानमयी छाया का आश्रय लेते हैं।

नाना प्रकार के भगवान् के चरणारविन्द की वन्दना करते हुए वे सारे देव श्रुतवती, ज्ञान और वैराग्य का वर्णन करने लगते हैं। तृतीय स्कन्ध के पाँचवें अध्याय के इकतालीसवें श्लोक में श्रुतवती भक्ति, ज्ञान, वैराग्य भगवान् के चरणपीठ का वर्णन है-

यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या
संमृज्यमाने हृदयेऽवधाय।
ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा
व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम्॥

- श्रीभद्भागवत महापुराण- ३.५.४१.

देवता कहते हैं- हम आपके चरणकमलों की उस चौकी का आश्रय ग्रहण करते हैं, जिसे भक्तजन श्रद्धा और श्रवण-कीर्तनादिरूप भक्ति से परिमार्जित अन्तःकरण में धारण करके वैराग्य से पुष्ट ज्ञान के द्वारा परम धीर हो जाते हैं।

इस दिव्य एवं महान् श्लोक में कुछ ऐसे

विमल शब्द हैं जो विशेष गूढार्थ लिए हुए हैं। महर्षि व्यासदेव ने मैत्रेय ऋषि के उस उपदेश को, जिसे उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के स्व-धाम-गमन के पश्चात् विदुरजी महाराज को दिया था, इस श्लोक के माध्यम से प्रस्तुत किया है और हमें बतलाया है कि एकमात्र भगवान् का चरणारविन्द ही जीवों का उद्धार करने वाला है, संसार-सागर के भयावह थपेड़ों से निरापद पार लगनेवाला है। सचमुच भगवान् के पावन एवं शीतल चरणों की छाँव ही संसारी जीवों के लिए एकमात्र गन्तव्य है। उन मंगलमय भगवान् के चरणारविन्द की छत्र-छाया में जाते ही संसार के सारे दुःख कलेश और पाप-ताप क्षणभर में दूर हो जाते हैं। देवों का कथन ध्यातव्य है-

**यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु
संसार दुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति॥”**

-श्रीमद्भागवतमहापुराण- ३.५.३८.

इसी अध्याय के इकतालीसवें श्लोक में कृष्णद्वैपायन महर्षि व्यास मैत्रेयजी के उपदेश का तात्पर्य बतलाते हुए कहते हैं कि हे जीव! हे संसारी मानव! श्रद्धा के साथ श्रुतवती भक्ति का अवधान करो। यहाँ श्रुतवती भक्ति विशेष रूप से ध्यातव्य है। भक्ति कैसी हो? कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासदेव कहते हैं कि श्रुति पर आधारित भक्ति ही करनी चाहिए। मनमानी भक्ति अर्थात् अपने मन के अनुसार भक्ति नहीं करनी चाहिए। भक्ति में अपने मन की बात नहीं करनी चाहिए। बहुत लोग मनमानी भक्ति करने लगते हैं; अपनी इच्छा के अनुरूप शास्त्र-विहीन भक्ति करने लगते हैं। भक्ति तो शास्त्रविहित और गुरु के द्वारा उपदिष्ट ही करनी चाहिए। जीवन भर के अनुभवों, तप, साधना, ध्यान, चिन्तन-मनन-निदिध्यासन के आधार

पर सन्तों, महात्माओं, ऋषि-मुनियों, विपश्चित् (विद्वान्) लोगों ने जिस भक्ति को बतलाया है, उसी भक्ति को करना चाहिए। भक्ति में मन की बात मानने से बड़ा अमंगल होता है। वेद-शास्त्र विरुद्ध भक्ति उपद्रव, उत्पात और अमंगल का कारण बन जाती है। शास्त्र-विहीन या शास्त्र-विरुद्ध भक्ति करने से व्यक्ति में अभिमान आ जाता है, व्यक्ति अहंकारी बन जाता है।

प्रश्न उठता है कि श्रुतवती भक्ति अर्थात् शास्त्र-विहित भक्ति करने से क्या होता है? इस भक्ति को करने से क्या लाभ मिलता है? महर्षि व्यासदेव की मान्यता है कि श्रुतवती भक्ति से हमारे अन्तःकरण का परिमार्जन होता है, हृदय की सफाई होती है। श्लोक में 'समृज्यमाने' शब्द आया है, जिसका अर्थ परिमार्जन होता है, सम्मार्जन या सफाई होता है। हम बर्तन को साफ करने के लिए माँजते हैं। यह माँजना शब्द इसी मार्जन से बना है। हमारे जीवन में सबसे बड़ी बात है हृदय की सफाई, मन की स्वच्छता उसकी निर्मलता। श्रीरामचरितमानस में भगवान् श्रीरामचन्द्र विभीषण-शरणागति के अवसर पर स्पष्ट शब्दों में कहते हैं-

निर्मल मन जब सो मोहि पावा।

मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

-रामचरितमानस- ५.४३.५

अर्थात् निर्मल मन वाला जन अर्थात् भक्त ही मुझे पा सकता है। छल, कपट और प्रपंच भगवान् को नहीं भाते।

मन दर्पण के समान होता है। उस पर संसार की वासनाओं और इच्छाओं- कामनाओं का मैल जम जाता है। मन-मुकुर मलिन हो जाता है। धूल से भरे दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब नहीं

दिखाई पड़ता। इसी प्रकार मन-मुकुर वासनाओं के मैल से मलिन हो जाता है। इसीलिए इसकी सफाई करते रहने की आवश्यकता है। शास्त्रों में मन की सफाई और हृदय की स्वच्छता के कई उपाय बताए गए हैं। सत्संग, हरिकथा-श्रवण, मनन-चिन्तन, ध्यान-निदिध्यासन, नाम-जप (भगवान् के नाम का जप), सन्त-दर्शन, गुरुदेव के चरणों में अनुराग, भगवान् के चरणारविन्द में गाढ़ प्रीति-भावना, सत्साहित्य का अध्ययन आदि मन को स्वच्छ एवं पवित्र करने के श्रेष्ठ साधन और उपाय हैं। महर्षि व्यासदेव इस श्लोक में बतलाते हैं कि श्रुतवती भक्ति करने से और श्रद्धा से भगवान् का भजन करने से तत्काल लाभ यह मिलता है कि हमारा अन्तःकरण स्वच्छ हो जाता है तथा भगवान् का ध्यान सम्भव और सुलभ हो जाता है। इसीलिए श्लोक में कहा गया है- 'संमृज्यमाने हृदयेऽवधाय।'

श्रीमद्भगवद्गीता में भी महर्षि व्यासदेव भगवान् श्रीकृष्ण से अर्जुन को संबोधित करते हुए कुछ इसी प्रकार की बातें कहते हैं-

**मच्चावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥**

- श्रीमद्भगवद्गीता- १२.२.

भगवान् के कहने का तात्पर्य है कि जो भक्त अपने मन को एकाग्र करके भजन, ध्यान और चिन्तन करता है, वह अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त होकर परमात्मा-परमेश्वर के साथ जुड़ जाता है और वही योगियों में श्रेष्ठ है। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि तू मुझमें अपने मन को लगा, अपनी बुद्धि को लगा, तभी तुम मुझमें निवास करेगा-

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

- गीता १२.८.

भगवान् में मन लगाने से तत्काल लाभ यह होता है कि मन पवित्र हो जाता है, हृदय स्वच्छ हो जाता है। संसार की, योग की चिन्ता मन को मलिन बनाती है। ईश्वर का चिन्तन अन्तःकरण को पवित्र बनाता है। भक्तगण और सन्तगण इसीलिए भगवान् से बराबर माँगते हैं कि हमारा मन निर्मल हो, हमारा हृदय शुद्ध हो, अन्तःकरण पवित्र हो। मन की पवित्रता- निर्मलता से ही भगवान् का साक्षात्कार सम्भव है। सच तो यह है कि अन्तःकरण की शुद्धि से ही जीव मोक्ष का भी अधिकारी बनता है। साथ ही योगी भी विशुद्ध मन से इस भयावह संसार को पार कर परमानन्द की प्राप्ति करते हैं। भर्तृहरि 'वैराग्य शतक' में कहते हैं-

**आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला
रागग्राहवती विर्तकविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी।
मोहावर्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी
तस्याः पारगतो विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः॥'**

विशुद्ध मन और पवित्र हृदय वाले योगी ही संसार की आशा-नदी को पार कर सकते हैं।

भक्ताग्र गण्य, कलिपावनावतार, अमित-महिमामय साधु-सम्राट् महाकवि तुलसीदासजी ने तो भगवान् श्रीराम से निर्भरा शक्ति की माँग करते हुए अपने मानस को, अन्तःकरण चतुष्टय को काम आदि दोषों से रहित होने की ही प्रार्थना की है-

**नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च॥'**

-रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, मंगलाचरण-२
सद्गुरु की चरण-रज से भी मन-मुकुर का मैल साफ होता है और सत्संग तथा हरि-कथा-श्रवण से भी अन्तःकरण स्वच्छ होते हैं। रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड के प्रथम दोहे तथा हनुमान-चालीसा के प्रारम्भ में ही गोस्वामीजी लिखते हैं कि गुरुदेव की चरण-रज से मन-मुकुर को स्वच्छ कर मैं श्रीरघुवीर के विमल यश का वर्णन करता हूँ-

श्रीगुरुचरण सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।

बरनउँ रघुवर बिमल जसु जो दायकुफल चारि॥

हृदय को पवित्र और सात्विक बनाने का एक श्रेष्ठ एवं सुन्दर साधन सत्संग है। सत्संग से अज्ञानता मिट जाती है, मोह-मद-मात्सर्य के अन्धकार का नाश हो जाता है और विवेक की प्राप्ति होती है। गोस्वामी तुलसी दास जी की मान्यता है कि सत्संग से ही विवेक की प्राप्ति होती है और यह सत्संग श्रीराम की कृपा का श्रेष्ठ फल है-

बिनु सतसंग बिबेक न होई।

रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥”

-रामचरितमानस १.२.७.

श्रीमद्भागवत महापुराण के माहात्म्य में भी महर्षि व्यासदेवजी ने देवर्षि नारदजी के श्रीमुख से कहलवाया है-

भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन

सत्सङ्गं च लभते पुरुषो यदा वै।

अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकार-

नाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः॥

- श्रीमद्भागवत-माहात्म्य २.७६.

जब अनेक जन्मों के संचित पुण्य-पुंज का उदय होने से मनुष्य को सत्संग मिलता है,

तब उसके अज्ञान-जनित मोह और मद-रूप अन्धकार का नाश होता है और तब उसे विवेक की प्राप्ति होती है।

श्रीमद्भागवत महापुराण में ही भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रिय सखा उद्धवजी से कहते हैं कि हे उद्धव! जगत् में जितनी आसक्तियाँ हैं, उन्हें सत्संग नष्ट कर देता है। यही कारण है कि सत्संग; जिस प्रकार मुझे वश में कर लता है, वैसा साधन न योग है, न सांख्य, न धर्मपालन और न स्वाध्याय, तपस्या, त्याग, इष्टापूर्त और दक्षिणा से भी मैं वैसा प्रसन्न नहीं होता। कहाँ तक कहूँ- व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ और यम-नियम भी सत्संग के समान मुझे वश में करने में समर्थ नहीं हैं-

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त न दक्षिणा॥

व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः॥

यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्॥

- श्रीमद्भागवत महापुराण ११.१२.१,२.

महर्षि व्यासदेव की मान्यता है कि शास्त्रविहित और श्रुतवती भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उससे हमारे हृदय का परिमार्जन होता है और भगवान् का ध्यान होने लगता है। जबतक हमारा हृदय भक्ति से स्वच्छ नहीं होता, तबतक परमात्मा का ध्यान नहीं होता। जब तक परमात्मा का चिन्तन, स्मरण, ध्यान नहीं होता, तबतक परमात्मा प्रभु की कृपा प्राप्त नहीं होती और न सत्संग की प्राप्ति होती है और न सत्संग की प्राप्ति होती है। अतएव शास्त्रविहित एवं श्रुतवती भक्ति तथा सत्संग ये ही दो प्रमुख साधन हैं जिनसे जीव इस भयावह संसार-सागर, को निरापद पार कर भगवद्धाम जाकर मुक्त हो जाता

है। श्रीभद्रभागवत महापुराण में ही भगवान् श्रीकृष्ण का कथन है-

**प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव।
नोपायो विद्यते संध्रङ्प्रायणं हि सतामहम्॥'**

-श्रीभद्रभागवत ११.११.४८.

ईसाई धर्मशास्त्र 'बाइबिल' में भी कहा गया है कि जो पवित्र हृदय के हैं, वे ही धन्य हैं; क्योंकि वे ही स्वर्ग में परमात्मा के दर्शन करने में समर्थ होते हैं-

Blessed are those whose hearts are pure;
For they shall see god in heaven."

- The Bible, Mathew ५-८.

इस श्लोक में वैराग्य पुष्ट ज्ञान का वर्णन है, तो गलत न होगा। वैराग्य आधार है, जिस पर ज्ञान स्थिर रहता है। जो ज्ञान वैराग्य से पुष्ट रहता है, वह सबल और शक्तिशाली होता है। सबल ज्ञान से ही संसार के विषयों का त्याग सम्भव है। वैराग्यविहीन ज्ञान निर्बल होता है। ऐसा ज्ञान अस्थिर और क्षणिक होता है। इसीलिए मैत्रेयजी विदुरजी को 'ज्ञानेन क्षणिक होता है। इसीलिए मैत्रेयजी विदुरजी को 'ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा' कहते हैं। वैराग्यपुष्ट ज्ञान से ही धीर एवं योगी परमात्मा-पद को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। श्रीरामभक्त कवि गोस्वामी तुलसीदाजी ने भी आपने रामचरितमानस' के 'अरण्यकाण्ड' में अपने इष्टदेव श्रीराम के श्रीमुख से कहलवाया है-

धर्म मे बिरति जोगते ग्याना।

ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥

-मानस-३.१५.१.

यहाँ श्रीराम लक्ष्मणजी को उपदेश देते हुए मोक्ष-प्राप्ति का साधन बतला रहे हैं। यहाँ भी 'बेद बखाना' शब्द-द्वय ध्यान देने योग्य हैं।

श्रुतवती शक्ति और वेद-विहित ज्ञान और वैराग्य दोनों बराबर हैं। यह क्रम देखने योग्य हैं- धर्म से वैराग्य, वैराग्य से योग, योग से ज्ञान। ऐसे ज्ञान से ही जीव को मोक्ष प्राप्त होता है, ऐसा वेदों में लिखा गया है। योग की पूर्वभूमिका उपर वैराग्य है। इसे ही गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस के उत्तर काण्ड में 'ज्ञानदीपक' प्रसंग में 'विमल विराग' कहा है-

तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता।

बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥'

-मानस-७.११६.१६.

विमल विराग या उपर विराग हो जाने पर ही योग होता है और तब ज्ञान होता है। गोस्वामीजी ने 'ज्ञान दीपक' प्रसंग में बतलाया है कि विमल विराग होने पर ही-

**जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जारि जाइ॥**

- मानस ७.११७

इस प्रकार महर्षि व्यासदेव भागवतजी में और गोस्वामी तुलसीदास मानसजी में एक ही बात अलग-अलग भाषाओं में कहते हैं। दोनों के कथनों का तात्पर्य एक ही है कि वेद-विहित, शास्त्र-विहित भक्ति, ज्ञान और वैराग्य से ही जीव भव-बन्धन से मुक्त हो सकता है। मनमानी भक्ति करने से, अपनी रुचि के अनुसार भक्ति से ऐसा सम्भव नहीं है। वैराग्य, ज्ञान, योग आदि का आधार धर्म है। ऋषि-मुनि, सन्त-महात्मा, आचार्य-भक्त आदि धर्म के महत्त्व और उसके मर्म को अच्छी तरह जानते थे। उसी प्रकृष्ट परम्परा के गोस्वामी तुलसीदासजी थे। इसीलिए उन्होंने धर्म से ही वैराग्य, योग, ज्ञान आदि की बातें कही हैं।

धर्म ही समस्त संसार का आधार है- 'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा'। श्रुति-सिद्धान्त है कि धर्म के बिना जीवन और सृष्टि का कोई मूल्य नहीं है। आधार के बिना जीवन का टिका रहना कठिन है। धर्म और आस्था जीवन को उन्नत बनाते हैं जीवन का उदात्तीकरण करते हैं। संघर्षों, तनावों एवं स्पर्धाओं से बचाते हैं और मानव को चिन्ता और निराशा से बचाते हैं। आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने भी अपनी रामायण में धर्म को जगत् का सार माना है-

धर्मसारमिदं जगत्।

आज मानव अपनी बुद्धि, अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों, तकनीकी कौशलों और अपनी तार्किक शक्तियों के मद में चूर है। आज के मानव को इन सारी चीजों पर गर्व है। उसका अहंकार बहुत बढ़ गया है। प्रकृति को भी वश में करके वह अपने आगे किसी को कुछ समझता नहीं। वह अपने को जगत् का नियन्ता भी मानने लगा है। यहाँ तक कि आज का तार्किक व्यक्ति ईश्वर के अस्तित्व को भी नकारने लगा है। ऐसी स्थिति में महर्षि वाल्मीकि, महर्षिव्यास और गोस्वामी तुलसी दास के धर्म-सम्बन्धी उदात्त विचारों की आज नितान्त आवश्यकता आ पड़ी है। हिन्द महासागर में सुनामी लहरों की विभीषिकाएँ, सउदी अरबिया में भयंकर हिमपात और यूरोप के तूफानों में लाखों के काल-कवलित होने पर एक बार फिर धर्म, आस्था, विवेक और नैतिकता की ओर आधुनिक विश्व का झुकाव भारतीय धर्म-दर्शन के प्रति अस्था व्यक्त करता है। हमारा अनुभूत सत्य और पूर्ण विश्वास रहा है कि प्राणिमात्र के सारे अभ्युदय उत्थान-उन्नयन तथा निःश्रेयस (आत्मा-कल्याण) अर्थात् मोक्ष का एक मात्र

कारण धर्म है-

यतो अभ्युदय-निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।'

यह धर्म वेद-उपनिषद्-पुराणेक्त धर्म ही है। सभी सन्तों-महात्माओं की मान्यता है कि माया-मोह से छुटकारा ज्ञान के द्वारा होता है। गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि सभी कर्मों का समापन ज्ञान में ही होता है-

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।'

गीता ४.३३

उन्होंने यह भी कहा है कि ज्ञान रूपी नौका पर चढ़कर ही तू पाप-समुद्र को पार कर जायेगा-

सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यति।'

- गीता ४.३६

ज्ञान प्रज्वलित अग्नि है। जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि सारे इन्धनों को जला देता है, उसी प्रकार ज्ञान रूपी सम्पूर्ण कर्मों को जला देती है-

यथैन्धसासमिद्धोऽग्निः भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा॥

- गीता ४.३७.

सचमुच ज्ञान के समान पवित्र करनेवाला इस संसार में कुछ भी दूसरा नहीं है। यह वचन भगवान् कृष्ण का है-

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

- गीता ४.३८.

इस ज्ञान को कौन पाता है और कैसे पाया जाता है, गीता, भागवत और मानस आदि धर्मग्रन्थों में बड़े कौशल से बतलाया गया है। गीता में इसके लिए भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन को उपदेशित करते हुए कहते हैं-

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणधिगच्छति॥

- गीता ४.३६.

कौन ज्ञान प्राप्त करता है? भगवान् श्रीकृष्ण बतलाते हैं कि जो जितेन्द्रिय है, तत्पर है अर्थात् साधन-परायण है और श्रद्धावान् है, उसी को ज्ञान प्राप्त होता है। इस ज्ञान से क्या लाभ है? भगवान् कहते हैं कि इस ज्ञान को प्राप्त कर तत्काल ही जीव परम शान्ति को प्राप्त कर लेता है। भगवान् की प्राप्ति ही परम शान्ति है, उनके धाम में जाना ही परम शान्ति है-

यदा गत्वा न निवर्तन्ते तत् धाम परमं मम।

- गीता १५.६.

इसी को ब्राह्मी स्थिति कहते हैं, यही भूमा का सुख है। गीता के दूसरे अध्याय के ७२ वें श्लोक में कहा गया है-

**एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वा स्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥'**

छन्दोग्योपनिषद् में कहा गया है-

**यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।
भूमैव सुखं भूमा त्वेवविजिज्ञासितव्य इति।**

- छान्दोग्य उपनिषद्- ७.२३.।

ऋषि ने कहा- जो भूमा है, असीम है, निरतिशय है, महान् है, वही सुख है। जो अल्प है, समीम है, परिमित है, क्षुद्र है, उसमें सुख नहीं है। भूमा ही सुख है, इसलिए भूमा को जानने की इच्छा करनी चाहिए। इस उपनिषद् में भी उसी ब्राह्मी स्थिति का वर्णन किया गया है।

भगवत्, रामचरितमानस, गीता तथा उपनिषदों में मोक्षप्रद इसी ज्ञान के विषय में कहा गया है। धर्म और धर्माचरण से वैराग्य की प्राप्ति होती है, फिर वैराग्य से योग होता है और योग से ज्ञान होता है, जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जिन बातों को अरण्यकाण्ड में गोस्वामी जी ने संक्षेप में कहा है, उन्हीं बातों को मानस के उत्तरकाण्ड में ज्ञान दीपक-प्रसंग में विस्तार से कहा गया है। तो शास्त्रों का तात्पर्य यह है कि धर्म से वैराग्य, वैराग्य से योग और योग से ज्ञान की प्राप्ति होती है। किन्तु ये सारे अर्थात् ज्ञान-विज्ञान, वैराग्य आदि भक्ति के ही अधीन हैं। गोस्वामी जी के दूष्ट देव भगवान् श्रीराम का कथन है-

जातें बेगि द्रबउँ में भाई।

सो मम भगति भगत सुखदाई॥

सो सुतंत्र अवलं ब न आना।

तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना॥'

-रामचरितमानस - ३.१५.२.३.

ज्ञान स्वतन्त्र नहीं है। उसके लिए वैराग्य का होना आवश्यक है। इसलिए महर्षि व्यासदेव ने भागवतजी के तृतीय स्कन्ध के ५ वें अध्याय के ४१ वें श्लोक में 'ज्ञानेन वैराग्यबलेन' कहा है। वैराग्य पुष्ट ज्ञान से ही धीरता, स्थिरता और फल की प्राप्ति होती है। श्रुतवती भक्ति करने से वैराग्य पुष्टज्ञान और विज्ञान सभी सुलभ हो जाते हैं। भक्ति सुखदाई है। ब्रह्म-सागर को ज्ञान के मदरा-चल से जब सन्तरूपी देवता मथते हैं तब कथा-सुधा अर्थात् कथामृत निकलता है और उसमें भक्ति की मधुरता होती है। गोस्वामी जी की मान्यता है-

ब्रह्म पयोनिधि मन्दर ज्ञान सन्त सुर आहि।

कथा सुधा मथि काढ़हि भगति मधुरता जाहि॥

-मानस ७.१२० (क)

कथामृत में भक्ति ही मधुरता है। ज्ञान-वैराग्य आदि सभी शुष्क हैं। अर्थात् वेद-शास्त्र पर आधारित भक्ति करने का सन्देश दिया है। शास्त्र-सम्मत भक्ति से ही जीव का उद्धार सम्भव

है। सारे शास्त्रों का निचोड़ यही है कि भगवान् के चरणों का आश्रय ही जीव का एकमात्र गन्तव्य है और श्रुतवती भक्ति से ही यह आश्रय मिलता है। सचमुच भगवान् के ये चरणाविन्द शरण में आए हुए जीवों के त्रिताप हर लेते हैं। जीव के सारे दुःखों और क्लेशों का शमन भगवान् के पावन चरणकमलों की शरण में जाने से ही होता है। अतएव हमें श्रुतवती भक्ति के माध्यम से भगवान् के चरणारविन्द की शरण में जाना चाहिए तभी हम मायामय संसार-सागर को पार कर सकते हैं और त्रि-ताप से बच सकते हैं।

महर्षि व्यास एवं गोस्वामी तुलसीदास दोनों ने अपने-अपने ढंग से इस श्रुतवती भक्ति का विशद विवेचन किया है। महर्षि व्यास श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में भक्ति को माता और ज्ञान-वैराग्य को उसके बेटे के रूप में चित्रित करते हैं। स्वयं भक्ति देवी ने अपना परिचय देते हुए कहा है कि मैं भक्ति हूँ और ये दोनों मेरे वृद्ध पुत्र ज्ञान और वैराग्य हैं-

**अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयो मतौ।
ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ॥**

-श्रीमद्भागवत-माहात्म्य १.४५.

यहाँ भक्ति माता के गौरवमय पद पर आसीन है और ज्ञान तथा वैराग्य पुत्र-रत्न हैं। भागवतकार व्यासदेव जी महाराज तीनों के समन्वय का दर्शन प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास भी भक्ति की व्याख्या करते हुए ज्ञान और वैराग्य की उपस्थिति को भी अनिवार्य मानते हैं-

**श्रुति सम्मत हरि भगति पथ संजुत बिरति विवेक।
तेहि न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पन्थ
अनेक॥**

-दोहावली ५५५

वेद-विहित तथा वैराग्य और विवेक (ज्ञान) से युक्त भक्ति ही करणीय है। ध्यातव्य है कि जहाँ व्यासदेव ने भक्ति को माँ और ज्ञान-वैराग्य को उसका बेटा बनाया है, वहाँ गोस्वामीजी ने भक्ति और ज्ञान को पत्नी और पति के रूप में चित्रित किया है-

पन्थ जात सोहहिं मति धीरा।

ग्यान भगति जनु धरे सरीरा॥

- मानस १.१४२.४

वन-पथ में भी ज्ञान (राम) आगे हैं, भक्ति (सीता) उनके पीछे हैं, वैराग्य (लक्ष्मण) भक्ति के पीछे हैं। ज्ञान और वैराग्य के संपुट में ही भक्ति सुरक्षित रहती है। यही श्रुतवती भक्ति का स्वरूप है।

भागवत महापुराण के इस श्लोक में एक और बहुत सुन्दर बात कही गई है। इसमें भगवान् के चरण-कमल-पीठ की बात भी कही गई है। अपने राष्ट्र में पीठाचार्यों की कमी नहीं है। भारतवर्ष में सैकड़ों पीठाचार्य मिलेंगे। धर्मपीठाधीश्वर से लेकर नैमिषपीठाधीश्वर, ज्ञानपीठाधीश्वर, वैराग्यपीठाधीश्वर, शक्तिपीठाधीश्वर तक अनेक पीठाधीश्वरों की वन्दना की जाती है। किन्तु तत्त्वादि देवताओं ने भगवान् के चरणों को ही पीठ कहा है और जो इस पीठ की शरण लेता है, वही परमात्मा के पद की प्राप्ति का अधिकारी होता है। इसलिए व्यासदेव लिखते हैं- 'तत्तेऽङ्घ्रि सरोजपीठम्'। भागवत के इस श्लोक के आधार पर ही गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस में भगवान् राम की पादुका को 'चरनपीठ करुना निधान के' कहते हैं। चित्रकूट में भरतजी भगवान् राम से एक सहारा, एक अवलम्ब माँगते हैं। तब

वसिष्ठ के कहने पर भगवान् उन्हें अपनी खड़ाऊँ देते हैं। एक प्रकार से इस खड़ाऊँ में ही सीताराम का अवतार हुआ। गोस्वामीजी लिखते हैं-

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥
चरन पीठ करुना निधान के।
जनु जगु जामिक प्रजा प्रान के॥
संपुट भरत सनेह रतन के।
आखर जुग जनु जीव जतन के॥
कुल कपाट कर कुसल करम के।
बिमल नयन सेवा सुधरम के॥
भरत मुदित अवलंब लहे ते।
अस सुख जस सिय रामु रहे ते॥

- मानस २.३१५.४-८

प्रभु श्रीराम ने कृपा करके खड़ाऊँ दी। भरत जी ने उन्हें आदर पूर्वक अपने मस्तक पर धारण किया। करुणानिधान प्रभु श्रीराम की ये दोनों खड़ाऊँ क्या हैं, इनकी अनेक प्रकार से गोस्वामीजी ने उत्प्रेक्षाएँ की हैं। ये दोनों मानो प्रजा के प्राणों के रक्षण के लिए दो पहरेदार हैं। भरत जी के स्नेहरूपी रत्न को गुप्त रखने के लिए संपुट अर्थात् डिब्बा हैं। जीव के यत्न के लिए मानों युगल अक्षर रा + म हैं। कुल के लिए किवाड़ हैं, कुशल कर्म के मानों दो कुशल हाथ हैं। सेवा रूपी सुधर्म के लिए निर्मल नेत्र हैं। इस अवलम्ब को पाकर भरतजी ऐसे आनन्दित हुए जैसे श्रीसीतारामजी ही मिल गए।

इस प्रकार महर्षि व्यासदेव ने और गोस्वामी तुलसीदासजी ने भगवान् के चरणों को जीव के

त्रिताप-हरण के लिए नाना प्रकार के भाव व्यक्त किए हैं। भागवत जी में भगवान् के चरणों को ही पीठ कहा है, पर मानसजी में उनकी खड़ाऊँ को चरण-पीठ कहा गया है। हमें भगवान् के चरण-वारिज को नेत्रों से निहारना चाहिए, मन से उनका स्मरण करना चाहिए तभी हमारा जन्म लेना सार्थक होगा। योग, तप, साधना, ज्ञान, वैराग्य सभी एक ओर और भगवान् के चरणों तथा उनके चरणों की पीठ और उन चरणों के चिह्नों का स्मरण-चिन्तन ही जीव के लिए अतिशय कल्याणकारी और मंगलकारी है। भक्ति और शरणागति ही हम संसारी मनुष्यों के लिए एक मात्र करणीय कर्म हैं। यही श्रुति-सिद्धान्त है। काक भुशुंडिजी के माध्यम से गोस्वामी जी कहते हैं-

श्रुति सिद्धान्त इहइ उरगारी।
राम भजिअ सबकाज बिसारी॥

- मानस ७.१२२.२

यही श्रुतिवती भक्ति है। इसी को श्रद्धा से करने पर जीव परमगति को प्राप्त होता है। आइये, श्रुतिवती भक्ति से हम अपने अन्तःकरण का परिमार्जन कर भगवान् को अपने हृदय-सिंहासन पर बैठा दें और उनकी अहैतुकी-असीम कृपा का लाभ प्राप्त करें।

निवास - ऋतम्भरा, शांतिपुरी,

पो० - मोतीहारी, पूर्वी चम्पारण (बिहार)

पिन - ८४५४०१, दूरभाष - २२१६१७



पृथ्वीधराचार्यविरचितम्

चण्डीस्तोत्रम्

शक्ति-पूजन की परम्परा में आचार्य पृथ्वीधर का नाम आदर के साथ लिया जाता है। परम्परानुसार इन्हें आदिशंकराचार्य का शिष्य माना जाता है; किन्तु इनकी रचनाओं के पुष्ट अन्तःसाक्ष्य इन्हें शम्भुनाथ अथवा सिद्धिनाथ का शिष्य प्रमाणित करता है। 'अर्धत्रयम्बक मठिका' काँगड़ा नगर में वज्रेश्वरी के जालन्धर-पीठ में प्रतिष्ठित थी। इसी पीठ के आचार्य सिद्धिनाथ थे। इन्हीं का दूसरा नाम शम्भुनाथ भी था। पृथ्वीधर ने अपनी प्रसिद्ध रचना भुवनेश्वरी-स्तोत्र में अपने गुरु का नाम आदर के साथ लिया है। प्रस्तुत चण्डीस्तोत्र में भी अन्तिम श्लोक में आचार्य पृथ्वीधर ने शम्भुनाथ अथवा सिद्धिनाथ को अपना गुरु माना है। आचार्य अभिनवगुप्त ने भी सिद्धिनाथ को अपना गुरु कहा है। ये सब काश्मीरी शैवागम के प्रतिष्ठित स्तम्भ हैं। इनका काल दशम शती का उत्तरार्द्ध माना गया है।

आचार्य पृथ्वीधर ने प्रस्तुत चण्डी स्तोत्र में दुर्गासप्तशती में वर्णित भगवती दुर्गा के माहात्म्य का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में सारगर्भित रूप में किया है। धर्मायण के प्रबुद्ध पाठकों के लिए दुर्गापूजा के अवसर पर यह उपहार प्रस्तुत है।

यत्कर्मधर्मनिलयं कलयन्ति तज्ज्ञा यज्ञादिकं तदखिलं सफलं त्वयैव।

त्वं चेतना यत इति प्रविचार्य चित्ते नित्यं त्वदीयचरणौ शरणं प्रपद्ये।।१।।

यज्ञ आदि जो कर्म और धर्माचरण ज्ञानी करते हैं, वे सब आपकी कृपा से ही सफल होते हैं; क्योंकि आप चेतना के रूप में स्थित हैं। अपने मन में यही सोच कर मैं आपके चरणों में शरण लेता हूँ।

यद्धारुणात्परमिदं जगदम्ब यत्ते बीजं स्मरेदनुदिनं दहनाधिरूढम्।

मायाङ्कितं तिलकितं तरुणेन्दुबिन्दुनादैरमन्दमिह राज्यमसौ भुनक्ति।।२।।

पाथोऽधिनाथतनयापतिरेष शेषपर्यङ्कालितवपुः पुरुषः पुराणः।

त्वन्मोहपाशविवशो जगदम्ब सोऽपि व्याघूर्णमाननयनः शयनं चकार।।३।।

हे जगन्मातः समुद्र के स्वामी की पुत्री लक्ष्मी के पति, शेषशायी, पुराण पुरुष भगवान् विष्णु आपके मोह पाश में बँधे हुए निश्चल नयनों से सो गये हैं।

तत्कौतुकं जननि यस्य जनार्दनस्य कर्णप्रसूतमलजौ मधुकैटभाख्यौ ।

तस्यापि यौ न भवतः सुलभौ निहन्तुं त्वन्मायया क्वलितौ विलयं गतौ तौ ।।४।।

जनार्दन भगवान् विष्णु के कर्णमल के रूप में मधु और कैटभ राक्षस उत्पन्न हुए थे; किन्तु उन्हें मारना विष्णु के लिए सुलभ नहीं हो सका। उन्हें आपने अपनी माया से मार डाला, यह वड़े आश्चर्य की बात है।

यन्माहिषं वपुरपूर्वबलोपपन्नं यन्नाकनायकपराक्रमजित्वरं च ।

यल्लोकशोकजननव्रतबद्धहार्दं तल्लीलयैव दलितं गिरिजे भवत्या ।।५।।

हे गिरिजे! अपूर्व पराक्रम वाले जिस महिषासुर ने इन्द्र के पराक्रम को भी अभिभूत कर डाला तथा जिसने तीनों लोकों में शोक उत्पन्न करने की ठान ली थी उसे आपने खेल खेल में ही खण्ड-खण्ड कर डाला।

यो धूम्रलोचन इति प्रथितः पृथिव्यां भस्मीबभूव समरे तव हुङ्कृतेन ।

सर्वासुरक्षयकरे गिरिराजकन्ये मन्ये स्वमन्युदहने कृत एष होमः ।।६।।

सभी असुरों का संहार करनेवाली हे हिमालयसुते! जो धूम्रलोचन पृथ्वी पर फैला हुआ था वह युद्ध में आपके हुंकार से ही भस्म हो गया, मानों जैसे आपने अपने क्रोध रूप अनल में ऐसा हवन किया हो।

केषामपि त्रिदशनायकपूर्वकाणां जेतुं न जातु सुलभाविति चण्डमुण्डौ ।

तौ दुर्मदौ तु परमाम्बरतुल्यमूर्ते मातस्तवासिकुलिशात्पतितौ विशीर्षौ ।।७।।

हे परम आकाश के समान स्वरूप वाली भगवती! इन्द्र की सेना के द्वारा जिस चण्ड-मुण्ड का वध सुलभ नहीं हो सका, वे दोनों दुर्मद आपके असि रूपी वज्र के आघात से सिरकटे गिर पड़े।

दौत्येन ते शिव इति प्रथितप्रभावो देवोऽपि दानवपतेः सदने जगाम ।

भूयोऽपि तस्य चरितं प्रथयांचकार सा त्वं प्रसीद शिवदूति विजृम्भितं ते ।।८।।

हे शिवे! आपने दूती का कार्य किया इसलिए प्रभावशाली होकर भगवान् शिव भी दानवपति के घर गये और आपकी जम्भाई ने ही भगवान् शिव के माहात्म्य को वार वार विस्तृत कर दिया। आप हमपर प्रसन्न हों।

चित्रं तदेतदपरैरपि ये न जेयाः शस्त्राभिघातपतिताद्बुधिरादपर्णे ।

भूमौ बभूव रमिताः पतिरक्तबीजास्तेऽपि त्वैव गगने गलिताः समस्ताः ।।९।।

हे अपर्णे! यह आश्चर्य की बात है कि दूसरे जिहें जीत न सके; शस्त्रों के प्रहार से गिरे रक्त से उत्पन्न होकर वे पृथ्वी पर फैल गये। आपने उन सबको आकाश में ही निगल लिया।

आश्चर्यमेतदतुलं यदभूत्सुरारिस्त्रैलोक्यवैभवविलुण्ठनपुष्टपाणिः ।

शस्त्रैर्निहत्य भुवि शुम्भनिशुम्भसंज्ञौ नीतौ त्वया जननि तावपि नाक्लोकम् ।।१०।।

यह भी आश्चर्य की बात है कि देवताओं के शत्रु राक्षस, शुम्भ और निशुम्भ, जो तीनों लोकों को लूटकर बाहुवली हो गये थे, उन्हें आपने अपने शस्त्रों से मारकर उन्हें भी स्वर्गलोक पहुँचा दिया।

त्वत्तेजसि प्रलयकालहुताशनेस्मिन् यस्मिन् प्रयान्ति विलयं भुवनानि सद्यः ।

तस्मिन् निपत्य शलभा इव दानकेन्द्रा भस्मीभवन्ति हि भवानि किमत्र चित्रम् ।।११।।

आपके तेज प्रलयकाल की अग्नि के समान हैं, जिसमें ये तीनों लोक तुरत विलीन हो जाते हैं। उसमें फलिंगों की तरह गिरकर यदि ये सभी दानवराज भस्मसात् हो गये तो इसमें भला आश्चर्य की क्या बात है!

तत्किं गृणामि भवतीं भवती प्रतापनिर्वापनप्रणयिनी प्रणमज्जनेषु ।

तत्किं गृणामि भवतीं भवतीप्रतापसंबर्द्धनप्रणयिनी विपदि स्थितेषु ।।१२।।

वामे करे तदितरे च तथोपदिष्टात् पात्रं सुधारसयुतं वरमातुलिङ्गम् ।

खेटं गदां च दधतीं भवतीं भवानीं ध्यायन्ति येऽरुणनिभां कृतिनस्त एव ।।१३।।

वाम कर में अमृत से युक्त पात्र तथा दक्षिण कर में श्रेष्ठ माला, खेटक और गदा को धारण करनेवाली आपका जो ध्यान करते हैं वे धन्य हैं।

आवाहनं यजनवर्णनमग्निहोत्रं कर्मापणं तव विसर्जनमत्र देवि ।

मोहान्मया कृतमिदं सकलापराधं मातः क्षमस्व वरदे बहिरन्तरस्थे ।।१४।।

मेरे अन्तःकरण तथा बाहर रहनेवाली हे मातः! हे वरदे! आवाहन, पूजन, ध्यान, हवन, माहात्म्य का वर्णन तथा विसर्जन जो मैंने किया है, उसमें मेरी अज्ञानता के कारण जो अपराध हुए हों उन्हें क्षमा करें।

अन्तस्थिताप्यखिलजन्तुषु तन्तुरुपा विद्योससे बहिरिहाखिलवस्तुरुपा ।

का भूरिशब्दरचना वचनातिगासीद् दीनं जनं जननि मामव निष्प्रपञ्चम् ।।१५।।

हे मातः ! आप अन्तजगत्

एतत् पटेदनुदिनं दनुजान्तकारिचण्डीचरित्रमखिलं भुवि यस्त्रिकालम् ।

श्रीमान् सुखी सुविजयी सुभगः क्षमः स्यात् त्यागी चिरन्तनवपुः

कविचक्रवर्ती ।।१६।।

श्रीसिद्धनाथापरनामधेयः श्रीशम्भुनाथो भुवनैकनाथः ।

तस्य प्रसादात् सुलभागमश्रीः पृथ्वीधरः स्तोत्रमिदं चकार ।।

श्रीदुर्गासप्तशती की भूमिका

डॉ. शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी

‘दुर्गासप्तशती’ नामक देवीमाहात्म्य का पवित्र ग्रन्थ इतना अधिक परिचित है कि उसके परिचय में कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है। इस दीप्तिमान स्तुति-वैभव ग्रन्थ-रत्न की इतनी अधिक प्रभा समस्त संसार में फैली हुई है और उसके इतने अधिक विविध रूप प्रकाशित हैं कि उनका आकलन करते जाने में जन्म-जन्मान्तर और युग-युगान्तर लगते जाते हैं परन्तु इस विस्तार में इति नहीं आ सकती, यहाँ तक कहा गया है कि अभी तो इस महान् रहस्य भरे खजाने की ऊपर की बन्द की गई मुहर की सील भी नहीं खुल सकी। अभी

तो भीतर की चमक अपने आप जो बाहर आ रही है उसके रंग में रंगे हुए ये सारे दृश्य हमारे सामने फैल कर हमको मुग्ध बनाए हुए है। यह सब तो उस रहस्यमय

सौन्दर्य की छवि की प्रतिच्छाया का वैभव हम देख पा रहे हैं और उस पर आत्मविभोर हैं, सप्तशती की भूमिका ही मनोविज्ञान से सिद्ध एक यथार्थ है और आज के युग में हमारे सामने अत्यधिक विचारात्मक और घटनात्मक रूपों के प्रासंगिक हो उठी है। पुराण-कथन की विस्तार शैली में समस्त भूमण्डल पर एकच्छत्र शासन

करने वाले महाराज सुरथ के विरुद्ध बने कोलाविध्वंसियों ने संख्या में कम होने पर भी महाराज सुरथ को पराजित कर राजधानी में नजरबन्द कर दिया। रात को एकाएक अकेलेपन का लाभ उठाकर घोड़े पर सवार होकर राजा सुरथ राजधानी से निकल पड़े और घोड़ा दौड़ते हुए रातभर चलते ही रहे। सबेरे की पौ फटने पर महाराज सुरथ ने अपने को एक ऋषि के आश्रम के बराबर घोड़े पर चलते पाया। उन्होंने घोड़े को रोकर उसकी समुचित जल और भोजन की व्यवस्था की और आश्रम में प्रवेश कर उस

आश्रम के निर्माता महर्षि मेघा को साष्टाङ्ग प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया और फिर उस आश्रम के सौन्दर्य से आकर्षित होकर इधर-उधर विचरण करने

लगे। आनन्दित हो, अपने को धन्य मान रहे थे। परन्तु अभी तो साक्षात् दर्शन दूर है।

इतेश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन् मुनिवराश्रमे।

वह आश्रम अत्यन्त आकर्षक, प्रशान्त, श्वापदाकीर्ण एवं मुनिशिष्योपशोभित है। उसमें घूमते हुए महाराज सुरथ अपने निकट की सारी घटनाएँ सोचने लगे – ‘अपने औरस पुत्रों की

दुर्गासप्तशती देवी की उपासना का प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जो मार्कण्डेय पुराण का अंश होते हुए भी पृथक् ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। इसके तीनों चरित्रों में सृष्टि का क्रमिक विकास निरूपित किया गया है। इस कथा के प्रथम वक्ता मार्कण्डेय मुनि हैं।

तरह प्रजा पालन में निरन्तर तत्पर रहने पर भी ये कोल, ये विध्वंसी शत्रु बनकर संख्या में अल्प होने पर भी छल-छद्म से मुझे जीत बैठे। मैं इनसे पराजित होकर अपने नगर में आया तो वहाँ देखा कि कोल तथा विध्वंसी आतंकियों के हाथों मेरे पराजय की खबर यहाँ पहले ही आ पहुँची है और मेरे ही अपने नियुक्त किये गए अमात्य दुष्टता से भर गए हैं। उन्होंने मेरे कोश और मेरी ताकत, मेरी सेना पर अधिकार कर लिया है और इस प्रकार राज्य से मेरा स्वामित्व जाता रहा। तब मैं शिकार खेलने के बहाने घोड़े पर बैठकर निकल पड़ा और इस घने जंगल में अपनी उधेड़बुन की तरंगों में बहता हुआ यहाँ चला आया। महाराज सोचने लगे, मेरा वह प्रधान सदा मदजल बहाकर वातारवण को अद्भुत सुगन्ध से मस्त रखने वाला शूर हाथी मेरे वैरियों के, शत्रुओं के, कोलों के, विध्वंसियों, आतंककारियों के वश में पड़कर कैसे श्वास ले रहा होगा। मेरी प्रसन्नता मानने वाले, मेरे लिए धन और अनेक भोजन प्रस्तुत करनेवाले, अनुगत सेवक गण, निश्चय ही इस काल अन्य शत्रु राज की आज्ञा का पालन करने को विवश हैं। अनाप-शनाप भोग-विलासों का जल्दी उपभोग कर डालने की धुन और नशे में नाचते हुए इन मेरे शत्रुओं के द्वारा अत्यन्त दुःख से संचित तथा प्रजा को सुख पहुँचाने के लिए एकत्र किया गया कोश, दुश्मनों के, आतंकियों के अविरत भोग विलासों में समाप्त हो जायेगा, क्षीण हो जायेगा।'

महाराज व्याकुल हो उठे। वे अपने परिवार की एक-एक बात को सोचते रहे कि परिवार जनों की इस समय क्या दशा होगी। उनकी इन व्याकुल घटिकाओं में ही उस प्रशान्त प्रभामय काल में महाराज सुरथ की नजर उस ऋषि आश्रम की सीमा में घूमते हुए एक वैश्य पर पड़ी। राजा ने उससे पूछा कि भाई, तुम कौन हो, यहाँ घूम रहे हो। देखने से लगा है कि तुम्हारा

मन व्यथित है- **दुर्मना इव लक्ष्यसे**। प्रेम से भरी राजा की बात सुनकर वैश्य ने जवाब दिया- मेरा नाम समाधि है। मैं वैश्य जाति से हूँ, मैंने धनाढ्य परिवार में जन्म लिया। जाने कैसा भाग्य ने पलटा खाय कि मेरी पत्नी, पुत्र, पौत्र, छोटे बच्चे बच्चियाँ उन सबको घर सहित छोड़कर निकल पड़ा हूँ। सारे धन पर पत्नी और पुत्रों ने अधिकार कर लिया। मुझे एकदम खाली करके घर से निकाल दिया। यहाँ आने पर भटकते-भटकते मुझे यही ध्यान आ रहा है, मेरे लड़के, दुराचारी तो नहीं हो जायेंगे, या कौन जाने दुराचारी हो जायें। अन्य स्वजन, दारा का व्यवहार कैसा है यह मैं यहाँ नहीं जान पा रहा हूँ। यही मुझे चिन्ता हो रही है।'

सुनकर महाराज ने कहा- अरे भाई, जिन्होंने सारी ममता छोड़कर तुम्हें घर से निकाल दिया, उनके हित-साधन की बुद्धि तुम्हें क्यों सता रही है। बुरा हो उनका, जिन्होंने तुम्हारे साथ यह सब किया।

समाधि ने कहा- आपने मेरे मन के एक हिस्से की चेतावनी को शब्द दिये हैं। मेरे मन में भी यह बात आती है, परन्तु मेरी ममता ओर मोह जीत जाते हैं, वही मुझे विह्वल बनाते जा रहे हैं।

यह सुनकर महाराज सुरथ समाधि वैश्य के साथ महर्षि मेधा के सामने प्रणाम करके बैठे और उन्होंने अपनी और समाधि वैश्य की उस समय की मनोदशा की भीषणता की चर्चा करके महर्षि से उसके समाधान के उपाय की जिज्ञासा की कि यह समाधि और मैं दोनों ही परिस्थिति को अच्छी प्रकार से देख जान और समझ रहे हैं फिर भी ज्ञानी होते हुए भी हम दोनों को यह मोह क्यों हो रहा है, हम विवेकान्ध होने से मुग्धता में क्यों डूबे हुए हैं।

महर्षि मेधा ने हँसते हुए बड़ी सरलता से उत्तर दिया कि ज्ञान हो जाने से कोई किसी काम से मन को हटाने में या लगाने में समर्थ नहीं हो

जाया करता है। जिन-जिन जन्तुओं में जिस-जिस ज्ञानेन्द्रिय का विकास है उन सभी को अपने-अपने विषय का ज्ञान रहता है। इन्द्रियों के विषय में देशकाल की दृष्टि से परस्पर भेद हुआ करता है। कुछ प्राणी दिन में अन्धे रहकर सबको खूब देखते हैं, अन्य प्राणी रात में अन्धे रहते हैं दिन में ही देख पाते हैं। कुछ ऐसे प्राणी हैं जो रात और दिन दोनों में समान रूप से देखने की शक्ति रखते हैं। ज्ञान होने पर भी इन पक्षियों की ओर क्यों नहीं देखते कि अपनी चोंच में गेहूँ के कण दबाकर अपने नन्हें बच्चों की चोंच में उन कणों को ला ला कर डालते हैं, जब कि वे स्वयं भी भूख से पीड़ित है।

वह देवी भगवती महामाया ज्ञानियों के चित्त को भी मोह में डाल देती। यह सारा चराचर जगत् उसी महामाया से विमोहित हो रहा है। वही प्रसन्न होने पर मनुष्यों को मुक्ति तक पहुँचा देती है।

यही भूमिका है, इस महान् ग्रन्थ दुर्गासप्तशती की। इसके आगे से भगवती के महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती स्वरूपावतारों की घटनाओं का सविस्तार विवरण तेरह अध्यायों में हुआ है।

इस भूमिका से अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त प्रस्फुटित होकर इस सम्पूर्ण परम पवित्र घटनावली को प्रासंगिक स्वरूप में प्रकट कर देते हैं कि आज भी महाराज सुरथ हैं, आज भी समाधि वैश्य है आज भी शत्रु कोल और विध्वंसी आतंकी है और आज भी संख्या में कम होने पर भी वे युद्ध में विजय होकर अन्यायों पर आमादा होते हैं और विशेषकर समाधि वैश्य की स्थिति तो आज और भी अधिक स्पष्टता से घर में दिखाई दे रही है कि घर से बाहर का रास्ता दिखा देते हैं और उसका समाधान होता है अपने ही जैसे भुक्त भोगी व्यक्ति के साथ वार्तालाप होने पर ऋषि के आश्रम में। आज शतशः वृद्धाश्रम खोले गए हैं और खोले जा रहे हैं, जहाँ इन निष्कासित वृद्धों की देखरेख के साधन उपलब्ध

हैं और जहाँ कुछ आश्रम के अनिवार्य निर्धारित नियमों का पालन करते हुए वृद्ध जन अपनी इच्छानुसार भक्तिज्ञान, अध्ययन, क्रीड़ा आदि में स्वयं को व्यस्त रखते हुए कालयापन कर सकते हैं।

महर्षि मेधा का आश्रम इस बात को संकेतित करता है कि आश्रमों की व्यवस्था कितनी मनोवैज्ञानिक और निस्वार्थता से तथा स्वाभाविक जीव दया करुणा आदि से भरी होनी आवश्यक है। कठिन से कठिन और जटिल से जटिल समस्या के समाधान के लिए महर्षि मेधा के प्रतिरूप महामनीषी उपस्थित है। भारतीय जीवन पद्धति में आश्रम संस्था बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास । इनमें केवल गृहस्थ आश्रम ही स्वरूप धारण किये हुए घसीटा जा रहा है। बाकी तीन आश्रम जहाँ-तहाँ बिखरे हुए हैं। वृद्धावस्था में पहुँचने वालों को अपने मोह की बलि चढ़ाने के लिए तैयारी करते हुए, अपने समस्त उत्तरदायित्वों को अपनी-अपनी सीमा और क्षमता के अनुसार पूर्ण करते हुए अनिश्चित स्थिति का वरण करना चाहिये। जिसमें भिक्षा का ही एक बड़ा संबल होता है। संन्यास में भोजन करने को भिक्षा लेना ही कहा जाता है।

वस्तुतः व्यक्तिगत सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय, भूत, भविष्य, वर्तमान सभी देश काल में सर्वनियामक महाशक्ति, महामाया के चरणों में स्वयं को निरन्तर जानने, समझने और उसे प्रसन्न करने में अपने अंगों को भी काटकर आहुति लगा देने में जीवन का सारतत्त्व समाहित है जिसके द्वारा राजा सुरथ और समाधि वैश्य ने महामाया का प्रत्यक्ष दर्शन कर अपनी मानसिक, अभिलाषा की परिपूर्ति का वरदान प्राप्त कर लिया।

जी २८, अरिबिन्द कोलोनी

बी.एच.यू., वाराणसी

हमारे जीवन-मूल्य

डी० आर० ब्रह्मचारी

किसी भी राष्ट्र की पहचान वहाँ का मानचित्र मात्र नहीं होता, बल्कि उसके भीतर से सतत प्रवाहित होनेवाली प्राण-वायु होती है जो उसके सप्राण होने

का प्रमाण है। इतिहास साक्षी है, इसके क्षुण्ण होने पर उस राष्ट्र को निश्चिह्न होने से कोई बचा नहीं सकता और वह

प्राण-वायु है, उसकी विचार-सम्पदा, उसकी सांस्कृतिक उपलब्धि, उसका तप और उसकी साधना। यही तो उसकी जीवन-शक्ति है, उसकी पहचान है। चिन्तन की इसी उपलब्धि के कारण वह विश्व से जुड़ता है, संकीर्णता-क्षुद्रता के निर्मोक को फाड़ता है, अपनी प्राकृतिक सम्पदा तथा अपने मानचित्र के प्रति साकांक्ष तो वह रहता ही है।

वैदिक वाङ्मय हमारे चिन्तन का प्रकाश है, उपनिषद् हमारी मनीषा की उपलब्धि है, पौराणिक साहित्य के अतिरिक्त हमारे विपुल नाट्य साहित्य, महाकाव्य, गीति रचनाएँ एवं मुक्तकों में हमारे बहुआयामी चिन्तन ही साकार हुए हैं, प्रतीकित हुए हैं, स्थापत्य और हमारे शिल्पों से हमारे चिन्तन ही मुखरित होते हैं, धारणाएँ और आस्थाएँ ही ध्वनित होती हैं। अन्य सारी चीजें सहवर्तिनी हैं, आनुषंगिक हैं, पोषक हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि मारक से सर्जक सदैव श्रेष्ठ होता है, उन्मूलक से स्थापक सदैव स्तुत्य होता है, वन्द्य होता है, वरेण्य होता है।

जीवन का आदि और अन्त तो सुनिश्चित है, परम सत्य है सारा झमेला तो बीच का ही जीवन है। अनन्त स्रोत से अनन्त की ओर बहती हुई एक रेखा अक्षुण्ण है; किन्तु यह निराशावाद हमें क्या जीवन के प्रति कर्तव्यों से विमुख नहीं करता? जब तक हमारी सत्ता है, तब तक हमें निश्चित रूप से कर्म करना है, जिसकी एक सम्यक् धारा है; आदर्श मूल्य हमारा लक्ष्य है और उसी लक्ष्य की प्राप्ति हमारे जीवन का मूल्य है। जीवन के मूल्य की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत है।

इसके अतिरिक्त अन्य-प्रकार हमारे लक्ष्य भी तो नहीं है। जहाँ की प्राण-वायु जितनी स्वच्छ होगी, वहाँ का स्वास्थ्य भी

उतना ही अच्छा होगा। प्रक्षालन, परिमार्जन, परिशोधन तो निसर्गतः होता रहता है। यह तो नियति के क्षण-क्षण का कार्य है, जीवन्तता की प्रकृति है।

जिसे हम साधारण भाषा में विचार कहते हैं, हमारे अर्जित-परिमार्जित संस्कार हैं जो सामान्य तो समान्य विषम से विषम परिस्थिति में भी, बल्कि विषम परिस्थितियों में तो और भी, हमारे व्यवहार से, हमारी करण्यता से अपेक्षा रखते हैं कि परिस्थिति की प्रतिकूलता में हम डोलते तो नहीं, डिग तो नहीं जाते हैं। परिस्थिति का वैपरीत्य तो हमारा परीक्षा-स्थल है; केवल समझने की जरूरत है, और आपत् से बचा ही कौन है?

**यह साँझ-उषा का आँगन,
आलिंगन विरह-मिलन का
चिर हास-अश्रुमय जीवन,
रे इस मानव जीवन का।**

भीषण विकटता से जूझते हुए मनुष्य को निष्कर्ष निकालने में दो-चार-छह महीनें का समय नहीं लगा होगा

अप्रत्यहं जीवितं जह्यां युष्मान् वा पुरुषर्षभः।

अपवादभयाद्भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम्।

-वाल्मीकि-रामायण

अर्थात् पुरुष श्रेष्ठ! लोकनिन्दा के भय से मैं अपने प्राणों को तथा तुम सबको पर्यन्त के भय से मैं अपने प्राणों को तथा तुम सबको पर्यन्त त्याग सकता हूँ, फिर सीता को त्याग देना कौन बड़ी बात है?

दो-चार दिनों में यह नतीजा नहीं आया होगा-

**कबिरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर
जो पर पीर न जानई, फिर काफिर बेपीर।**

और न यह रातोंरात की उपज है-

**जे गरीब परहित करे, ते रहीम बड़ लोग
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मितार्ई जोग।**

दुःख की घड़ी अथवा आपत्काल में तो वस्तुतः हममें और निखार आता है-

रंग लाती है हिना पत्थर पर घिसने के बाद।

सुवर्ण की परीक्षा के ही सदृश पुरुषों की परीक्षा भी होती रहती है-

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते

निघर्षणच्छेदनतापताडनैः

तथा चतुर्थिः पुरुषः परीक्ष्यते

श्रुतेन शीलेन गुणेन कर्मणा।

मित्रता हमारे जीवन का मूल्य है।

मित्रता बड़ा अनमोल रतन।

क्या उसे तोल सकता है धन॥

पर उसमें विचार्य है उसका निर्वाह, उसकी पवित्रता का आकलन और उसके मानदण्ड पर खरा उतरने का कौशल। नहीं तो,

दामिनि दमक रही धन माहीं।

खल के प्रीति जथा थिरु नाहीं॥

बालू की भीति, ओछे की प्रीति।

अन्यथा, निर्वाह के अप्रभाव में शत्रुता को प्राप्त मित्रता की भयंकरता में सारा जीवन स्वाहा होते देर भी नहीं लगती। और यह भी सच है कि उसके उन्नयन से शांति की शीतलता को कोई रोक भी नहीं सकता। सच्चे मित्र की परीक्षा मो आपत् काल में होती है-

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।

आपत काल परखिए चारी।

अन्यथा, सुख के तो घनेरो साथी होते हैं-

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।

मित्र-धर्म का निर्वाह किया था राम ने सुग्रीव प्रसंग में। अगर वह सीता-हरण जनित अपनी एकमेक अभीप्सा-सिद्धि चाहते तो वह बालि-संसर्ग के से भी सम्भव था, सुलभ, पर अशरण-शरण का क्या होता तब?

सखा सोच त्यागहु बल मोरे।

सब विधि घटब काज मैं तोरे।

यही नहीं, राम-कथा में हनुमत्-तत्त्व के विनियोजन की अप्रत्यक्ष पृष्ठभूमि क्या है-

कौन सो संकट मोर गरीब को

जो तुमसो नहिं जात है टारो।

को नहिं जानत हैं जग में

कपि संकट मोचन नाम तिहारो॥

दृढ आस्था और प्रबल विश्वास, जीवन-पथ के दो विमल पाथेय हैं जिससे दुस्तर संसार का सुगमता से संतरण सम्भव है, पर

परम गंग को छाँड़ि महातम

दुर्मति कूप खनावै॥

कोई यदि यह सोचता हो कि यहाँ कायर

मन कहँ एक अधारा। दैव-दैव आलसी पुकारा' के लिए अवकाश है, वैसी भावना की पुष्टि है तो उस भ्रंश बुद्धि को कतई चैन नहीं। क्योंकि आर्त प्राणी इस संबल पर ही पुनः पुनः उर्जस्वल होकर कर्मोन्मुख होता है, उद्यम के लिए तत्पर होता है।

कर से कर्म करहु विधि नाना।

श्रोता रखहु जहँ कृपा निधाना।

पूरी शक्ति से वह उपस्थित विपदा से जूझता है और आभ्यन्तरिक सबलता का अनुभव करता है, तत्क्षण अपनी पीठ पर उसे वदह हस्तता का अहसास भी इसी शक्ति के बल पर होता है। फलतः उसमें सद्यः शक्तिमत्ता-सकारात्मकता का उद्रेक होता है। महात्मा गाँधी ने इसे 'सत्य' शब्द द्वारा परिभाषित किया है।

कर्म तो मूल सूत्र है ही। इसमें किसे सन्देह हो सकता है भला- योगः कर्मसु कौशलम्। पर निखालिस कर्मण्यता विचार-विमुख होकर नहीं, जड़ पत्थर बनकर नहीं, कर्ता होने के वर्णनातीत स्वाद के साथ। कर्मोद्यत उसके लिए देखना यह है कि इस संघर्ष में वह अपनी वैयक्तिकता का किस हद तक अतिक्रमण कर सकता है? अपनी सीमा से कितना उत्तीर्ण हो सका है? क्योंकि वैयष्टिकता बाँधती है, सामष्टिकता मुक्त करती है।

और, हकीकत है कि कोई सदैव-सर्वत्र बँधा रहना चाहता नहीं। बन्धन घुटन और अकुलाहट उत्पन्न करता है। इसलिए कहा गया है-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

अपने शिविर में राम बैठे हैं। उनके समक्ष प्रताड़ित विभीषण उपस्थित होता है, लात खाया हुआ विभीषण, व्यथित विभीषण, तिरस्कृत विभीषण। उसकी अचानक उपस्थिति को देखकर

वानरराज सुग्रीव की चिन्ता निराधार नहीं कही जा सकती-

भेद हमार लेन सठ आना।

राखिय बाँधि मोहि अस भावा।।

उस क्षण राम यह भूल जाते हैं कि जायापहर्ता मायावी के भाई के सम्बन्ध में राजा सुग्रीव का सन्देह न तो किञ्चित् अनैतिक है और न कदाचित् अनिवार्य ही। वहाँ तो मात्र इतना ही है-

सरनागत कहँ जे तजहि,

निज अनहित अनुमानि।

ते नर पाँवर पापमय

तिन्हहि विलोकत हानि।।

विभीषण की पीड़ा के सम्मुख उनकी पीड़ा स्वतः गौण हो जाती है -

निज दुख गिरि सम रजकरि जाना।

मित्रक दुख रजमेरू समाना।

इस प्रसंग में कतिपय खोजी मतिमानों की कल्पना इस तथ्य का रेखांकन करते देर नहीं लगाती कि यह तो राम की कूटनैतिक चाल थी कि विभीषण को मिला लो और उसके माध्यम से शत्रु के सम्पूर्ण गोपनीय रहस्य का घर बैठे सन्धान कर लो। सम्भव है कि वे शबरी-उद्धार-प्रसंग में वह अपने तूणीर से कुछ इसी प्रकार का तीर निकालकर लक्ष्यवेध करें और गृध्रराज जटायु के उद्धार में भी उन्हें इसी प्रकार की गन्ध लगे तो कोई आश्चर्य नहीं, परन्तु ऐसे अनुसन्धायकों की अद्भुत कलाकारिता के समक्ष इसका उत्तर क्या होगा जब अहल्या, अभिभूत अहल्या सहज कह उठती है -

मुनि शाप जु दीन्हा अति भल कीन्हा

परम अनुग्रह मैं माना।

देखेऊँ भरि लोचन हरि भवमोचन

इहइ लाभ शंकर जाना।।

इक्कीसवीं शती में चरणन्यास करने वाला प्रभुत्व का आकांक्षी मनुष्य सारी चीजों को निरस्त कर कौन सा नाटक नहीं करता? वह सब कुछ करने में तनिक लज्जा-संकोच नहीं करता जो आज की शती उपलब्ध करा चुकी है, किन्तु जब राजकुमार भरत से सभी मूर्द्धाभिषिक्त होने का एक स्वर से आग्रह करते हैं तो उनकी प्रतिक्रिया होती है -

एहि ते मोह काह अब नीका।

तेहि पर देन कहहु तुम टीका।।

किन्तु किंचित् इस पर भी विचारें -
ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पियाइअ बारूनी, कहहु काह उपचार।

और फिर कैकेयी की दशा देखें -

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई।

कुटिल रानि पछितानि अघाई।।

अवनि जमहि जाँचत कैकेयी।

महिन बीचु विधि मीचु न देई।।

इसके संबन्ध में पता नहीं उनकी कौन-सी खोज होगी, कैसा अनुसन्धान होगा?

राम की एकदम पारदर्शी मान्यता है -

निर्मल मन जन सो मोहि भावा।

मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

कहना नहीं होगा कि उसका सम्यक् सफल निर्वाह हुआ है।

वह स्पष्ट कहते हैं -

परहित वस जिन्ह के मन माहीं।

तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।

तब आतंकवाद, उग्रवाद, अपहरण, बलात्कार और हत्या के साथ-साथ सत्ता की प्राप्ति की कभी न तृप्त होनी वाली सर्वग्रासी बुभुक्षा की ज्वाला में धू-धू कर जल रहे सन्दर्भों के सामने यह ज्वलन्त प्रश्न है कि क्या ऐसी पवित्र मान्यताएँ बीते कल की वस्तु भर रह गईं

हैं, संग्रहालय की शोभा? इन मूल्यों की प्रासंगिकता का सर्वभ मूलोच्छेद हो गया है?

लगता तो ऐसा है कि आज, और आज तो और इस औषधि की रोज जर्जर मनुष्य को आवश्यकता है। जब कि बाएँ हाथ को दाएँ पर सन्देह है और दाएँ को बाएँ पर कि कौन कब क्या कर दे, सिवा इसके दूसरा समाधान भी तो परिलक्षित नहीं होता। कादो से कादो कभी धोया नहीं जा सकता।

नित्य प्रयोग पर प्रयोग हो ही रहे हैं, किन्तु फल क्या सामने आ रहा है?

अपने में भर सब कुछ कैसे व्यक्ति विकास करेगा? यह एकान्त स्वार्थ है उसका सबका नाश करेगा। औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ। अपने सुख को विस्मृत करके सबको सुखी बनाओ।

- कामायनी

और ऐसा गोष्ठियों, परिषदों, सभाओं, बैठकों और प्रचारों के नुस्खों द्वारा कतई सम्भव नहीं है। नित्य थोक भाव से ऐसा स्वांग तो हो ही रहा है, किन्तु, उसकी आड़ में क्या होता है, प्रत्यक्ष है। आवश्यकता है आस्था, विश्वास, निष्ठा और सम्पूर्ण संकल्प शक्ति के साथ जीवन में प्रत्येक को उतारने की, नहीं तो -

ज्ञान दूर कुछ किया भिन्न है,

इच्छा क्यों पूरी हो मन की।

एक दूसरे से न मिल सकें,

यह विडंबना है जीवन की।

प्रश्न सीधा संवेदनीयता का है, चिन्तनीय है कि उत्तरोत्तर इसका क्षरण होता जा रहा है।

नक्कूथान,

मोहनपुर, समस्तीपुर

शक्तिपुंज स्वामी विवेकानन्द

- प्रो० रामाश्रय प्रसाद सिंह

स्वामी विवेकानन्द एक नाम है महाशक्ति का, आत्म-शक्ति का; एक ऐसी दिव्यशक्ति का जो उनको शक्ति देता है, जो शक्तिहीन हैं। यह नाम नरेन्द्र का है, जो नरों में इन्द्र भी है और नर-शार्दूल भी; जो नर-पुंगव भी है और नरता का शिखर भी, सुमेरु-शिखर। श्रीरामकृष्ण परमहंस के पावन संस्पर्श से छात्र नरेन्द्र विवेकानन्द बन जाता है और अपने गुरुदेव की भविष्य-वाणी को सिद्ध कर देता है

- “नरेन एक दिन विश्व को हिलाकर रखा देगा”। ग्यारह सितम्बर अठारह सौ तिरानबे को अमेरिका के शिकागो शहर के

आर्ट पैलेस के बृहत् सभागार में आयोजित विश्व-धर्म-सभा में चुनिन्दा सात हजार अमेरिकी नागरिकों एवं विश्व के सभी धर्मों के श्रेष्ठ नागरिकों के बीच अपने अमृतोपम अभिभाषण से शक्तिपुंज स्वामी विवेकानन्द ने आत्मा के दिव्यत्व, जीवन के अखण्डत्व, ईश्वर के एकत्व, सभी धर्मों के समत्व एवं उदात्त वेदान्त-दर्शन के वैशिष्ट्य को अपनी ओजस्वी वाणी में रखकर विश्व को हतप्रभ कर दिया, अपने सद्गुरुदेव की सद्वाणी को सत्य और सही सिद्ध कर दिया। उन्होंने नरत्व को दिव्यत्व से मंडित कर, जीवत्व को

शिवत्व से अभिषिक्त कर इतना ऊँचा उठा दिया कि देवत्व ईर्ष्या करने लगा, स्वर्ग धरती से सिहाने लगा।

विवेक और आनन्द जब किसी नरेन्द्र से जुड़ जाते हैं, तब मानवता का प्रकाश-पुंज पृथ्वी पर पसर जाता है, छा जाता है। स्वामी विवेकानन्द मानवता एवं दिव्यता का एक ऐसा ही प्रकृष्ट प्रकाश-पुंज लेकर अवतरित हुए थे। शक्ति-पुंज

का दूसरा सार्थक वेदान्त दोनों को जोड़ कर एक नई आध्यात्मिक ऊर्जा उत्पन्न करती है, नव्य मानवता का धरती के

वक्ष पर एक दिव्य द्वार खोलती है और विज्ञान तथा वेदान्त का एक श्रेष्ठ एवं संयुक्त शिखर सृष्ट करती है। प्रज्ञा और पराक्रम का प्राणवान् प्रतीक है स्वामी विवेकानन्द; हृदय और मस्तिष्क का; बुद्धि और विवेक का, भक्ति, कर्म और ज्ञान का समन्वय-सामंजस्य है स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व! विज्ञान और वेदान्त को मिलाकर जो एक नई एवं दिव्य ऊर्जा स्वामी विवेकानन्द ने विकसित की, वही वर्तमान विश्व के लिए सही एवं मंगलकारी ऊर्जा है। यह ऊर्जा ही अचेतन को चेतन बनाती है, मरणशील को अमरत्व प्रदान

स्वामी विवेकानन्द का जन्म २२ जनवरी १८६३ ई० में हुआ था। इनके बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। वे वलिष्ठ शरीर के स्वामी थे। उन्हें कुश्ती, बॉक्सिंग, दौड़ आदि की रुचि थी। साथ ही संगीत के अच्छे जानकार भी थे। प्रारम्भ में यूरोपीय संस्कारों का उनमें पूरा जोर था। वे हर्वर्ट स्पेंसर जोन स्टुअर्ट, शेली और वड्सवर्थ से पर्याप्त प्रभावित थे; किन्तु परमहंस रामकृष्ण से जब उनकी भेंट हुई तब वह क्षण दिनकरजी के शब्दों में “प्रद्धा और बुद्धि का मिलन था, रहस्यवाद और बुद्धिवाद का आलिंगन था।” इस क्षण ने भारत को विवेकानन्द जैसे दार्शनिक का देश होने का गौरव प्रदान किया।

करती है, शव को शिव बनाती है और सबसे बढ़कर कायरता के कालुष्य को घो-पोंछकर साहस और शौर्य का, सेवा और समर्पण का प्रकाश विकीर्ण करती है। यह वह शक्ति है जो दीनता एवं अवसाद को, क्षीणता और विषाद को मिटाकर महत्ता एवं महनीयता का, हर्ष और साहस का विस्तार क्षेत्र सृजित करती है। यह प्राणमयी प्रकाशमयी शक्ति वेदान्त की वह सिंह-शक्ति, जो उदात्त स्वर में घोषणा करती है-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत।

**क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग
पथस्तत्कवयो वदन्ति॥''**

- कठोपनिषद्- १.३.१४.

उठो, जागो, श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जाकर आत्म ज्ञान प्राप्त करो, तत्त्वज्ञान प्राप्त करो; ज्ञानीजन, पंडितगण तत्त्वज्ञान के मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण की हुई धार के सदृश दुर्गम बतलाते हैं। अंग्रेजी में इसे उन्होंने कहा - "Arise and awake. Go to the teachers. Learn the truths of spiritual life from these master minds. Like the sharp edge of a razor is that path, so say the sages, difficult to tread and hard to cross."

कठोपनिषद् और स्वामी विवेकानन्द की भाँति ही जेसस क्राइस्ट ने 'बाइबिल' में कहा है कि वे थोड़े भाग्यशाली पुरुष होते हैं जो सीधे दरवाजे पर, परमात्मा के दरवाजे पर पहुँच जाते हैं। उन्हें वह मार्ग स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि ये लोग जागरूक मस्तिष्क के व्यक्ति हैं। ईसामसीह कहते हैं- Enter ye in at the strait gate : for wide is the gate And broad is the way that leadeth to destruction, and many there be which go in threath :

Because strait is the gate and narrow is the way which leadeth unto life, and few there

be that find it."- The Bilule, Mathew, ७.१३-१४

आज जबकि बिना उद्यम और अध्यवसाय के सस्ते और आसान तरीके से ज्ञान को विशेषकर आत्मज्ञान को प्राप्त करने के फेरे में रहते हैं, स्वामी विवेकानन्द की औपनिषदिक वाणी, वेदान्त की उनकी विमल वाणी हमें यह प्रेरणा देती है कि आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश के लिए एक अति जागरूक एवं सावधान मन (An awakened alert mind) की नितान्त आवश्यकता है। उन्होंने आत्मानुभूति के विषय में प्रकाश डालते हुए कहा है कि सम्पूर्ण ज्ञान, सारी पवित्रता हमारी आत्मा में ही निहित है। हमारे अन्तराल में ही वह शत्रु ज्योति विद्यमान है जो प्रकृति से ढकी हुई है। उसे हटाने की आवश्यकता है। इसके लिए अभ्यास और साधना, अभीप्सा की आवश्यकता है। नचिकेता बनने की आवश्यकता है। वे कहते हैं- "All knowledge is within us. All perfection is there already in the soul. But this perfection has been covered up by nature; layer after layer of nature is covering this purity of the soul. What have we to do? Really, we do not develop our souls at all. What can develop the perfect? We simply take the veil off; and the soul manifestos itself in its pristine purity, its natural, innate freedom."

- Complete works, vol १, ११ th editon.

सचमुच यह उपनिषद् वाणी ही स्वामी विवेकानन्द की विमल वाणी है, मानव में अन्तर्निहित दिव्यत्व की, दिव्य शक्ति की वाणी है।

स्वामी विवेकानन्द आर्यत्व एवं दिव्यत्व के सेतु थे, श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की ऊँचाई थे; ऐसी ऊँचाई, जिसमें उनके गुरु श्रीराम कृष्ण की ऊँचाई मिली हुई थी। यह सेवा, सद्भाव, समर्पण, सौहार्द, सामरस्य और स्नेह की ऊँचाई थी। यह

ऊँचाई इंगित करती है कि प्रज्ञा और पुरुषार्थ का समन्वय कर पुरुष देवत्व से ऊपर उठ सकता है और अपनी चारित्रिक दीप्ति से नरत्व की एक ऐसी दिव्य छवि विकसित कर सकता है, जो आनेवाली हजार-हजार युगों तक प्रेरणा का प्रकाश-पुंज बनकर धरती पर बनी रह सकती है। स्वामी विवेकानन्द का विराट व्यक्तित्व मनुष्यत्व एवं दिव्यत्व का ऐसा ही सन्तुलित सम्मिश्रण था, जिसमें आर्य ऋषि की की भव्यता, महावीर हनुमान की शूरता, श्रीराम की मर्यादा, श्री कृष्ण की कर्म-शक्ति, दुर्गामाता की निर्भीकता, वेदान्त का ज्ञान, लोक-सेवा की पराकाष्ठा और दलित मानवता के प्रति असीम दया-भावना का पुंज लहराता रहता था।

एक प्रकार से स्वामी विवेकानन्द मर्यादा, मूल्य और मानवता की पावन त्रिवेणी-धारा प्रवाहित करने के लिए ही मात्र चालीस वर्ष की आयु लेकर नर-रूप में इस धराधाम पर अवतरित हुए थे। महर्षि वाल्मीकि और भगवान राम सहित महात्मा बुद्ध की असीम करुणा का अंश लेकर आए थे स्वामी विवेकानन्द। दरिद्र को नारायण मानकर 'जीव-सेवा ही शिव-सेवा है' का आदर्श बताने आए थे स्वामी विवेकानन्द! मस्तिष्क, हृदय और हाथ को धर्म के माध्यम से मानव-मंगल में लगाने का दर्शन बतलाने आए थे स्वामी विवेकानन्द! 'दरिद्रनारायण' शब्द का अर्थ बतलाने आये थे करुणामूर्ति स्वामी विवेकानन्द; भारत राष्ट्र को जागरूक और सबल राष्ट्र के रूप में परिवर्तित करने आए थे स्वामी विवेकानन्द! परमात्मा के प्रति पूर्ण प्रेम तथा पीड़ित मानवता के प्रति असीम दया-भाव को दर्शाने के लिए अवतरित हुए थे स्वामी विवेकानन्द। सभी धर्मों से मानवधर्म श्रेष्ठ है, इस सत्य को दर्शाने आए थे ऋषिकल्प व्यक्तित्व वाले स्वामी विवेकानन्द। सद्गुरु की

महिमा को दर्शाने आए थे स्वामी विवेकानन्द! राष्ट्र-सेवा के साथ मानव-सेवा का समन्वय सामंजस्य करने आए थे इस धराधाम पर स्वामी विवेकानन्द।

श्रेष्ठ मानवीय गुणों से सम्पन्न स्वामी विवेकानन्द अपने सद्गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस के आदर्शों, विद्वान्तों तथा उनकी सेवा-भावना और साधना के जाज्वल्यमान तथा प्राणवान् प्रतीक थे। उनकी वाणी में दिव्यता थी, सात्विकता थी और ओजस्विता थी। जिस प्रकार उदास, हताश और निराश अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के उपदेशों द्वारा शक्ति, साहस, शौर्य और आत्मा-बल प्रदान कर कुरुक्षेत्र के रण-क्षेत्र में विजय श्री दिलाई, उसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने अपनी ओजस्वी वाणी से, सिंह-गर्जना से, अपने अग्नि-मंत्र से सुप्त, परतन्त्र, निराश, हताश, उदास भारतवासियों को, एक राष्ट्र की युवा पीढ़ी को जगाया, उन्हें अपने स्वरूप से परिचित कराया। उन्होंने अपनी उदग्र एवं उपयोगी तथा प्रेरणादायी वाणी से भारत की आत्मा को स्पन्दित किया। 'भारत का भविष्य 'शीर्षक से लिखते हुए उन्होंने कहा था- "हमारा राष्ट्र ही हमारा एकमात्र जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम, बेकार दोड़े और जिस विराट देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें। अपने चारों ओर फैले विराट की पूजा ही प्रथम पूजा है। ये मनुष्य और पशु, जिन्हें हम आस-पास और आगे-पीछे देख रहे हैं, ये ही हमारे ईश्वर हैं; और इनमें सबसे पहले पूज्य हैं हमारे अपने देशवासी" अपने राष्ट्र एवं राष्ट्र-जन के प्रति ऐसी दिव्य भावना, ऐसी पूज्य भावना कितने लोगों में देखने को मिलती है।

काश! आज के विचारों के अनुरूप अपने को ढाल पाते तो हमारे राष्ट्र की आज जो दुर्गति हो रही है, वह न होती। भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे वर्तमान भारत को स्वामी विवेकानन्द का ही चरित्र, उनका ही आचरण, उनका ही सेवा-भाव चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द का जीवन सेवा और त्याग के बीच से गुजरा था। उन्होंने अपने गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस के आदेश का अक्षरशः पालन किया था- 'शिवभाव से जीव से वा, नारायण भाव से नरसेवा।' सचमुच स्वामीजी का जीवन-दर्शन मानव-सेवा का दर्शन था। मानव में भी जो दीन है, दुःखी हैं, उनकी सेवा। अपने सद्गुरुदेव की वाणी को ही स्वामी विवेकानन्द ने अपने जीवन का मूलमन्त्र बना लिया और जबतक जीवित रहे, संन्यासी जीवन को सेवा का श्रेष्ठ माध्यम बना दिया। इस जीव-सेवा को उन्होंने वेदान्त-दर्शन से पुष्ट कर दिया था।

वेदान्त ब्रह्म और जीव के एकत्व की घोषणा करता है। स्वामीजी ने नर-नारायण, जीव-शिव को सेवा के सेतु से जोड़ दिया। उन्होंने बतलाया कि प्रत्येक जीव में शिव अर्थात् ईश्वर का निवास है। इसलिए जीव की सेवा ही ईश्वर की सच्ची सेवा है। उनका यह कथन हमारे मर्म को झकझोर कर रख देता है - "प्रत्येक नर और नारी को, हर व्यक्ति को, नारायण की दृष्टि से देखो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, मात्र सेवा करने का अधिकार तुम्हारा है। इसलिए ईश्वर की सन्तानों की सेवा करो। यदि ईश्वर के अनुग्रह से तुम उनकी सन्तान के काम आ सके तो तुम धन्य हो।"

विश्व-मानवता और राष्ट्र-जन के उद्धार-उन्नयन के मध्य ही स्वामी विवेकानन्द

की जीवन-सरिता प्रवाहित थी। विश्व-कल्याण और भारत का उत्थान ये ही दो प्रमुख स्वप्न थे स्वामी विवेकानन्द के और उनचालीस वर्ष तथा कुछ महीने की अल्पवय में ही उनसे जो कुछ हो सका, उन्होंने कर दिखाया। संन्यास-जीवन को सेवामय जीवन में परिणत करने का प्रथम और सर्वाधिक श्रेय स्वामी विवेकानन्द को ही है। आज समस्त विश्व में श्रीरामकृष्ण मिशन जिस रूप में और जिस निष्ठा से सेवा-रत है, उस भवनीय मिशन की स्थापना स्वामी विवेकानन्द ने ही की। अमेरिका तथा यूरोप आदि से प्राप्त समस्त धन-राशि को उन्होंने मठ और मिशन को समर्पित कर दिया। आर्त्त का उद्धार और उन्नयन उनका सबसे बड़ा जीवन-लक्ष्य था। दुःखी और पीड़ित मानवता के प्रति उनकी असीम सेवा-भावना देखते ही बनती थी। एक बार उन्होंने अपने गुरु-भाइयों, संन्यासियों तथा भक्तों-शिष्यों के बीच त्याग और सेवा का महत्व बतलाते हुए कहा था - "याद रखो अपनी मुक्ति और लोगों के हित के लिए ही इस जगत में संन्यासी का देह-धारण होता है। करोड़ों आर्त्तनाद का, पीड़ितों का दुःख दूर करने के लिए, विधवाओं के आँसू पोंछने के लिए, शोक-मग्न माताओं को सांत्वना प्रदान करने के लिए, अज्ञानी एवं निराश जनता की आजीविका के साधन जुटाकर उन्हें उनके पैरों पर खड़ा करने के लिए, सभी के आध्यात्मिक एवं जागतिक कल्याण हेतु शास्त्र का प्रबन्ध करने के लिए और वेदान्त ज्ञान के द्वारा लोगों के हृदय में सुप्त ब्रह्म-केसरी को जगाने के लिए ही इस संसार में संन्यासी का जन्म होता है।"

शक्तिपुंज स्वामी विवेकानन्द ने संन्यास को एक नया रूप दिया। 'संन्यासी' शब्द का परम्परागत जो अर्थ था, उसे उन्होंने बदल दिया। अपनी लगन, अपनी निष्ठा, अपनी सुदृढ़

इच्छा-शक्ति, संकल्प-शक्ति, परमात्मा-परमेश्वर में अपने अटूट विश्वास, अपने गुरु के प्रति असीम श्रद्धा-भक्ति के बल पर उन्होंने अपने जीवन के सपने पूरे किए। सम्पूर्ण राष्ट्र में घूम-घूम कर; कन्याकुमारी से लेकर नगराज हिमालय के उत्तुंग शिखरों तक भ्रमण कर, रुग्णावस्था में भी जन-सेवा-कार्य करते हुए उन्होंने अपने संन्यास-जीवन को सार्थक सिद्ध किया। उनके सेवामय जीवन में कभी विश्राम और विराम नहीं था; आलस्य और प्रमाद नहीं था; अहंकार का, कर्तापन का लेश भी नहीं था। वे हिमालय की भाँति अपने लक्ष्य के प्रति अडिग, उदग्र, उन्नत और सुदृढ़ रहे। गिरि-पथ के अथक पथिक की भाँति वे विघ्नों, बाधाओं और विपदाओं को रौंदते हुए आगे और ऊपर बढ़ते गए। लगता है कि हिन्दी के यशस्वी महाकवि श्री जयशंकर प्रसाद ने स्वामी विवेकानन्द के अविराम सेवामय जीवन और उनके अडिग लक्ष्य को देखकर ही निम्नलिखित काव्य-पंक्तियाँ लिखी थीं -

पैरों के नीचे जलधर हों,
बिजली से उनका खेल चले।
संकीर्ण कगारों के ऊपर
शत-शत भरने बेमेल चलें।
सन्नाटे में हो विकल पवन,
पादप निज पद हों चूम रहे।
तब भी गिरि पथ का अथक पथिक,
ऊपर ऊँचे सब झेल चले॥”

शक्तिपुंज स्वामी विवेकानन्द के जीवन में शक्ति और सामर्थ्य का अक्षय-अव्यय कोष था। उनके अंग-अंग में ओज और शक्ति लहराती रहती थी। जीवन्तता उनकी चिर सगिनी थी। प्रकृष्ट ऊर्जा लिए वे गाँव-गाँव, नगर-नगर, डगर-डगर अग्नि-मन्त्र बाँटते रहे, लोगों को जगाते रहे, स्वाधीनता और स्वाभिमान का महामन्त्र

राष्ट्र-जन के कानों में फूँकते रहे। आलस्य, प्रमाद, कलह, वैर, नफरत, घृणा के शिकार भारतीयों के मन में आर्यत्व, शुचित्व और एकत्व का दिव्य भाव भरते रहे - “मेरे भारत उठो! तुम्हारी जीवनी-शक्ति कहाँ है? वह तुम्हारी चिर आत्मा में है। मैं देखता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति की भाँति प्रत्येक राष्ट्र का भी एक विशेष जीवनोद्देश्य है। वही उसके जीवन का केन्द्र है, उसके जीवन का प्रधान स्वर है, जिसके साथ अन्य सब स्वर मिलकर समरसता उत्पन्न करते हैं।” ऐसा था उदात्त, उन्नत उदग्र जीवन स्वामी विवेकानन्द का। कर्म और सेवा की अपरिहार्य प्रेरणा उन्हें चैन नहीं लेने देती, विश्राम नहीं करने देती। वे निरन्तर गतिशील थे, सक्रिय थे - प्रज्ञा के प्रकृष्ट प्रकाश से परिपूर्ण, एक प्रसन्न पर्वत-प्रपात की भाँति जो सरिता का श्रेष्ठ रूप लेकर सागर में विलीन हो जाता है। स्वामीजी का सार्थक एवं सेवामय जीवन इसी रूप में व्यतीत हुआ।

स्वामी विवेकानन्द का सन्देश सनातन-शाश्वत सत्य का सार्वभौम सन्देश है। वह किसी देश-विदेश या व्यक्ति-विशेष या काल-विशेष का सन्देश नहीं है। वह कालजयी सन्देश है एवं स्वामी विवेकानन्द कालजयी महापुरुष हैं। उनकी वाणी शाश्वत मनुष्यता की वाणी है, सनातन सत्य की वाणी है। वैदिक ऋषियों एवं विपश्चित विप्रों की वह विमल वाणी ही स्वामी जी की दिव्यवाणी है, जो सत्संग, सद्भाव और सामरस्य की वाणी बनकर एक बार फिर विवेकानन्द जी की वाणी के रूप में भारत-वसुन्धरा पर फूटी थी। उसमें मानव-मागल्य की महनीय आभा थी और ‘सर्वभूतहितेतरता:’ या ‘सर्वलोक हितेतरता:’ की पूत भावना का प्रकाशमय प्रस्फुटन हुआ था। वह वाणी विमलता की, सामाजिक आचारसंहिता की ओर सबसे बढ़कर उत्कृष्ट मानवीय मूल्यों

पर आधारित एकता-अखण्डता की वाणी थी जो भेदभावों से ग्रसित विश्व के वक्ष पर समन्वय-सामंजस्य का विमल वातावरण विनिर्मित करना चाहती थी, ताकि नया मानव उच्चतम मूल्यों से युक्त हो सके और संसार से शोषण, दोहण, हिंसा और युद्ध सर्वदा के लिए समाप्त हो जायें। स्वामी जी की वाणी में युग-युग के सत्य की, सनातन सत्य की अभिव्यक्ति हुई है। इस वाणी में सम्पूर्ण मानव-जाति की मंगल-भावना, कल्याण-कामना ध्वनित हुई है। यह मांगल्य, मानवत्व, दिव्यत्व एवं शिवत्व-शुभ्रत्व की वाणी है। इस वाणी में प्रेरणा का अद्भुत प्रकाश है; प्रमाद और आलस्य को भकभोर कर तोड़ने की ताकत है; एक बेहतर इंसान बनने की सलाह है और उच्चतर मानवीय मूल्यों से संयुक्त होने की ललक है।

स्वामीजी की वाणी वह वाणी है जो संसृति-सेवा का पाठ पढ़ाती है, प्रतिकूल परिस्थितियों में साहस का भाव पैदा करती है और सबसे बढ़कर बाहरी भेदभावों को मिटाकर एकत्व एवं दिव्यत्व की अनुभूति करने का अवसर प्रदान करती है। यह वाणी संन्यास-धर्म का सही मर्म बताती है, हमारी समझ और संवेदना को विकसित करती है, हमारी कुण्ठा को तोड़ती है तथा हमें विकुण्ठ बनाती है। यह वाणी आत्म-कल्याण एवं लोक-कल्याण की समन्वित वाणी है - **‘आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।’** यह वाणी श्रद्धा और विश्वास की वाणी है, अनास्था की जलती मरुभूमि में आस्था की हरीतिमा उगाने की वाणी है। स्वामी विवेकानन्द की वाणी वासना-विकृति से बचाकर उपासना-सुकृति की सही दिशा में ले चलनेवाली वाणी है। यह मानवोचितकर्म की वाणी है। यह प्रज्ञावाद और प्राणिवाद के बीच सेतु स्थापित करने की वाणी है। उन्होंने अपने समय के

भारतवासियों को जगाने के लिए सिंह-गर्जना करते हुए कहा था -

" We have wept long enough; no more weeping, but stand on year feet and be men."

हमने बहुत आँसू बहाए। अब आगे नहीं रोना है। आँ, हम अपने पैरों पर खड़े हों और मनुष्य बनें। ऋग्वेद की यह वाणी ही 'मनुभवि' मनुष्य बनो, **" Be a man"** स्वामी जी की ओजस्वी वाणी है।

अद्भुत प्रतिभा के धनी थे स्वामी विवेकानन्द। 'प्रज्ञा-पुरुष' शब्द उनके लिए ही समुचित और समीचीन जान पड़ता है। विलक्षण और विराट् व्यक्तित्व था स्वामीजी का। उनका एक-एक शब्द मंत्र था। सोये हुए को जगाने की, जगे हुए को चलाने की, चलते हुए को दौड़ाने की, मृतप्राय में संजीवनी शक्ति भरने की अद्भुत शक्ति थी उनकी वाणी में। स्वामी विवेकानन्द की वाणी मनुष्यता के पक्ष में निकली हुई सबसे ऊँची हाँक है। दुःखी, आर्त और पीड़ितों के लिए सहानुभूति और संवेदना का शिखर स्वर है स्वामी जी की वाणी। उनकी आवाजें उनके पक्ष में निकली है, जिनकी आवाज को तथाकथित सभ्य समाज ने सदियों से मुख में ही बन्द कर दिया था। दलितों के दिलों में दया की दौलत भरने, गिरे हुआँ को ऊपर उठाने तथा शोषितों का उद्धार-उन्नयन करने के लिए जोरदार आवाज लगाई है स्वामी विवेकानन्द ने। उनकी वाणी में वेदान्त का ओजस्वी स्वर गुंजायमान है - "डरो मत, निर्भीक बनो, आगे बढ़ो, कर्म-सागर में कूद पड़ो।" युग-युग के मनुष्य को आलोक प्रदान करने की अद्वितीय शक्ति है उनकी वाणी में। प्रेरणा एवं प्रकाश का अद्भुत, अक्षय, अजस्र स्रोत है उनकी वाणी। न केवल भारत में अपितु

विश्व के प्रायः सभी देशों के लोगों, नेताओं, शिक्षकों, छात्र-छात्राओं तथा युवा-पीढ़ी ने स्वामीजी की वाणी से सत्प्रेरणा का प्रकाश लिया है आज भी लाखों-करोड़ों लोग उनकी दिव्य एवं ओजस्विनी वाणी से प्रेरणा का प्रकाश ले रहे हैं। इस संबन्ध में इण्डोनेशिया के भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय सुकर्णो का एक सुवक्तव्य द्रष्टव्य है -

" Swami Vivekanand! What a name! He was one of those who gave so much inspiration to me - inspiration to be strong, inspiration to be a servant of go, inspiration to be a servant of my country, inspiration to be a servant of the poor, inspiration to be a servant of mankind. "

कितना प्रेरणादायक कथन है पूर्वराष्ट्रपति सुकर्णो का! कितना असरदार जादू था स्वामीजी की वाणी का। उनका साहित्य, उनका अभिभाषण कितना प्रेरणादायक और प्रभावकारक है कि पढ़ते ही रोम-रोम कण्टकित हो जाता है। संसार के लोगों को अभेदत्व का, एकत्व का सन्देश देते हुए उन्होंने कहा है - "तुम्हारे भीतर जो परमात्मा है, वही सबमें है। यदि तुमने यह न जाना, तो कुछ न जाना। भेद हो कैसे सकता है? यह सबतो एक है। प्रत्येक प्राणी सर्वोच्च प्रभु का मन्दिर है। यदि तुम उसे देख सके, तो ठीक और यदि नहीं देख सके, तो तुममें आध्यात्मिकता अभी तक नहीं आई।"

विस्तार को, फैलाव को उन्होंने मनुष्यता की पहचान का मापदण्ड माना था। संकुचितता-संकीर्णता को वे मनुष्यता का अपघात मानते थे। वे बराबर कहा करते थे - "विस्तार ही जीवन है और संकोच मृत्यु; प्रेम ही जीवन है और द्वेष ही मृत्यु" अर्थात्

Expansion is life and contraction is death;
Love is life and hatred is death."

सचमुच स्वामी विवेकानन्द शक्तिपुंज थे; प्राचीन तथा नवीन विचारों के बीच के सेतु थे; वेदान्त और विज्ञान के समन्वयक थे और सबसे बढ़कर दिव्यत्व एवं मनुष्यत्व के संस्थापक-प्रतिष्ठापक थे। ऐसी प्रखर प्रतिभा और पुरुषार्थ, ऐसी प्रज्ञा और पराक्रम के प्राणानु प्रतिक पुरुष तथा नूतन और पुरातन के सम्मिश्रण के नर-नारायण के पावन चरणों में उनके जन्म-दिन के शुभ अवसर पर कोटि-कोटि नमन, वन्दन और अभिनन्दन है।

जय विवेकानन्द! जय भारत!! जय मानव!!!

U

ऋतम्भरा, शान्तिपुरी
पो०- मोतिहारी, पुर्व चम्पारण,
पिनकोड - ८४५४०१ (बिहार)
दूरभाष - २२१६१७
कोड - ०६२५२

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति यस्स धम्मने सया मणो।।
उत्तमखम मद्दवज्जव-सच्चुच्चं च संजं चेव।
तवचागमकिंचण्हं बह्म इदि दसविहो धम्मो।।

धर्म उत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा, संयम और तप उसके लक्षण हैं। जिसका मन सदा धर्म में रमा रहता है उसे देव भी नमस्कार करते हैं।
उत्तम क्षमा, मृदुता, सरलता, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, अकिंचनता और ब्रह्मचर्य ये दश धर्म हैं।

(जिन सूत्र)

अबहिं मातु में जाऊँ लवाई

- डॉ० कामाख्या चरण सिंह

रामायणादि ग्रन्थों में हनुमानजी का परम पावन दिव्य चरित्र बड़ा ही अद्भुत, अनुपम, अद्वितीय, ज्ञानवर्धक और प्रेरक है। बालपन में सूर्य को मीठा फल समझकर निगलने, श्रीराम के

स । थ ।
बाल-क्रिडा।
करने,
राम-सुग्रीव-मैत्री,
सीतान्वेषण से
लंका के दुर्दान्त
राक्षसों के संहार
तक हनुमानजी
द्वारा शौर्यपूर्ण

अद्भुत कार्य संपन्न हुए हैं। कदाचित् इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने हनुमानजी को अतुलित बलधाम, महावीर, विद्यावान्, गुणवान्, चतुर, कुमति निवारक और सुमति के संगी आदि कहा है। उन्होंने रौद्ररूप धारण कर लंका जलायी, असुरों का संहार किया और प्रभुराम के अनन्य सेवक बन सन्तों का कल्याण किया। संसार के जितने द्रुगम-कठिन कार्य हैं, सब उनकी कृपा से सुगम और आसान हो जाते हैं। सर्व संकटमोचन होने से वह नाम लेते ही सभी प्रकार के दुःख दूर करनेवाले हैं। यथा:

और देवता चित्त न धरई।

हनुमत सेई सब सुख करई॥

संकट करै मिटे सब पीड़ा।

जो सुमिरै हनुमत बलबीरा।

भगवान् श्रीराम ने सुग्रीव की सेना की सहायता से अपहृता सीता की खोज कराने लगे तो हनुमान् को दक्षिण की ओर भेजा गया। सब जानते थे कि सीता को रावण ले गया है, लेकिन उसने कहाँ रख छोड़ा है इसे कोई नहीं जानते थे। इसलिए तो सभी दिशाओं में खोजी सेना भेजी गयी; किन्तु रावण की राजधानी में बुद्धि, विवेक, बल एवं शौर्य से सम्पन्न हनुमान् को भेजा गया। अशोकवाटिका में सीता माता के साथ हनुमान् का साक्षात्कार हुआ। वहाँ दोनों के बीच का वार्तालाप रामकथा में एक आदर्श है। वाल्मीकि ने भी इस वार्तालाप की योजना की है। इस प्रसंग पर तुलसीदास की रचना भी निराली है। इसी संवाद पर विवेचन यहाँ प्रस्तुत है।

जय जय जय हनुमान गोसाईं।

(श्री हनुमान चालीसा)

या जयति मंगलागार! संसार मारापहर
वांनराकार

वि ग, ह
पुरानी।
(विनय-पत्रिका,
२७)

क ।
भाव है कि
जैसे भगवान
शि । व

अमंगलवेश में भी मंगलकारी और अमंगलहारी हैं, ऐसे ही शिव स्वरूप होने से हनुमाजी भी कल्याण के आगार हैं :

मंगल-मूरति मारुत- नन्दन।

सकल-अमंगल-मूल-निकन्दन॥

पवन-तनय सन्तन-हितकारी।

हृदय-विराजत अवध बिहारी॥

(विनय-पत्रिका, ३६)

श्री हनुमानजी मंगल-मूरति हैं। समस्त विघ्नों, अमंगलों के हर्ता हैं। ईष्ट-वियोगादि सभी प्रकार के कष्ट दूर करनेवाले और सन्तो की कल्याण करनेवाले हैं। श्री सीताजी भी सन्त हैं। अपने प्रिय स्वामी श्रीराम से बिछुड़ गयी है। लंका में असहाय दुःख भोग रही हैं। दुष्ट रावण जाने कैसी-कैसी बातें, अनाप-सनाप बकता रहता है। हर घड़ी जान से मार डालने की धमकियाँ

देता है। सीताजी उसको भस्म कर देने की सामर्थ्य रखते हुए भी सब सहन करती हैं। श्रीराम ने इसी को लक्ष्य कर ये पंक्तियाँ कही हैं :

बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे।

खल के बचन सन्त सह जैसे॥

(मानस, ४/१३/४)

प्रवर्षण पर्वत पर पड़े-पड़े श्रीराम यही सोच रहे हैं कि खल रावण ने न जाने कितने कठोर वचन कहे होंगे और सीता जी ने सन्त होने कारण उन वचनों को सहन किया होगा; किन्तु हमारे हनुमानजी ठहरे पक्के सन्त हितकारी। वह दुष्ट रावण के वज्र से भी कठोर कुवचनों से मर्हाहत सन्त सीताजी को श्रीराम के वियोग में रोते-बिलखते कैसे देख सकते हैं। पहले जानकारी के वियोग में राम का रोना-धोना देखा, अब अपनी आँखों के सामने उनकी प्रिया का उनसे भी बुरा हाल देख रहे हैं। खल के कुलिश-कठोर वचनों को कोनों से सुन रहे हैं। दुष्ट रावण ने उन्हें जीवन धारण करने के लिए दो मास की अवधि निश्चित कर दी है। खबरदार किया है कि उसने अपना इरादा नहीं बदला तो मृत्यु निश्चित है। हनुमान् दुष्ट रावण के विनाश और सीताजी के उद्धार की बात सोचने-विचारने लगे और रावण के वहाँ से खिसकते ही जानकारी के सामने प्रकट हो गए। कहने लगे, 'वह उन्हें अब और दुःख नहीं' भोगने देंगे, अपने कन्धे पर बिठाकर इसी वक्त उन्हें राम से मिला देंगे :-

यद्येवं देवि मे स्कन्धमारोह श्रणमायतः।

रामणे योजयिष्यामि मन्यसे यदि जानकी॥

(अध्यात्म रामायण, ५/५/६)

कि हे देवि! यदि आप स्वीकार करेंगे तो मेरे कन्धे पर बैठ जाइए, मैं एक क्षण में ही आपको श्रीराम से मिला दूँगा।

'वाल्मीकीय रामायण' में तो और भी

अधिक विस्तृत वर्णन है :-

अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव सराक्षसात्।

अस्माद दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते॥

(५/३७/२६)

अर्थात् मैं अभी आपको राक्षसजनित दुःख से छुटकारा दिला दूँगा। हे देवि! आप मेरी पीठ पर बैठ जाइए।

इधर राम भी जानकी के शुभ संवाद को उत्साह मन में संजोए प्रस्रवण पर्वत पर हनुमान् की बाट जोह रहे है।

उनकी आँखें हनुमान पर टिकी हैं कि वह अब आए, अब आए! तभी तो हनुमान् ने श्री सीताजी से कहा कि 'मैं आपको अभी पहुँचाए देता हूँ।'

न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये।

वाप्सु वा गतिभङ्गं ते पश्यामि हरिपुंगव॥

(वा.रा. ४/४४/७)

भूमि, अन्तरिक्ष, आकाश, अमरालय या जल में भी जिसकी गति का कोई अवरोध नहीं है, ऐसे महाबलशाली हनुमानजी के लिए कौन-सा कार्य कठिन है। इसलिए जानकी का दुःख नहीं देख सके। उन्हें झटपट पीठ पर बिठाकर प्रभु से का दुःख नहीं देख सके। उन्हें झटपट पीठ पर बिठाकर प्रभु से मिलाने की बात सोच लेते हैं। अपने स्वामी के प्रति अत्यधिक स्नेह, प्रीति और अनन्य भक्ति के कारण वह सीताजी से विनय पूर्वक अपनी पीठ पर बैठने का आग्रह करते हैं:-

पृष्ठमारोह मे देवि माविकाङ्गस्व शोभने।

योगमन्विच्छ रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी॥

(वही, ५/३७/२६)

अर्थात् हे देवि! आप मेरी पीठ पर बैठिए। मेरे कथन की उपेक्षा मत कीजिए। चन्द्रमा से मिलनेवाली रोहिणी की भाँति आप श्रीराम से

मिलने को निश्चय कीजिए।

हनुमानजी का यह प्रस्ताव सीताजी को चक्कर में डाल देता है। उन्हें हर्ष भी होता है और विस्मय भी कि महीनों बाद कोई सुधि लेने आया है, वह भी वानर! जरा देखो तो सही, एक डाल से दूसरी डाल पर छलांग लगानेवाला यह बन्दर कैसी-कैसी घुड़कियाँ दे रहा है। कितनी बढ़-चढ़कर बातें कर रहा है। कहता है, मुझे अपनी पीठ पर बिठाकर समुद्र लाँघ जायगा। सीधे राम से मिला देगा। ऐसे दुस्साहस की तो उसने कभी कथा भी नहीं सुनी। जब राजकुमारी थीं, तब राजसभाओं में नित्य ही ऋषि-मुनियों के मुँह से वेद-पुराणोक्त प्रामाणिक कथाएँ सुनाकरती थी; पर उनमें वानरों की ऐसी रोमांचक कथाएँ हर्गिज न थीं। हाँ, श्री अयोध्याजी में वनगमन के समय स्वामी ने :-

भालु बाघ बृक के हरि नागा।
करहिं नाद सुनि धीरजु भागा।
नर अहार रजनीचर चरहीं।
कपट वेष बिधि कोटिक करहीं॥
ब्याल कराल बिहग बन घोरा।
निसचिर निकर गहन सुधि आएँ।
मृग लोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ॥

(मानस, २/६२/४)

कहकर उसे अवश्यक भयभीत करना चाहा था; पर वह पुरुसिंह (राम) के होते भला क्यों डरने लगी। किसकी मजाल है जो उसकी ओर आँख उठाकर भी देखे :-

को प्रभु संग मोहि चितब निहारा।
सिंह-बन्धुहि जिमि ससक सिआरा॥

(वही, २/६६/७)

तब की बात और थी, किन्तु आज तो हनुमान जी के प्रस्ताव ने सिंहनी को मृगलोचनि

बना दिया। उसे ऊहापोह में डाल दिया। राजरानी को आज बन्दर से पाला पड़ गया:

‘चित्र लिखित कपि देखि डेराती।’

(मानस, २/५८१४)

जो कपि राजमहलों की दीवारों में बने चित्रों में वर्षों डराता रहा, वही उनके सामने खड़ा था। अपनी पीठ पर बैठने की आग्रह कर रहा था। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है :

का सुनाइ बिधि काह सुनावा।

का देखाइ चह काह देखावा।

(वही, २/४७/१)

उसका सिर फटा जा रहा था कि यहाँ तो लंका के इतने बड़े-बड़े बहादुर योद्धा, विशाल आकृति वाले दुर्दान्त राक्षसों की सेना और कहाँ यह टिगना-सा बन्दर। इसे वह वानर की चपलता ही समझती है जो उन्हें अपनी पीठ पर बिठाकर समुद्र पर कर राम से मिलाने की बातें कर रहा है। और, जैसा उसका आकार-प्रकार है, उससे तो यही प्रतीत हाता है :

हनूमन् दूरमध्वानं कथं मा नेतुमिच्छसि।
तदेव खलु ते मन्ये कपित्वं हरियूथप।
कथं चाल्पशरीरस्त्वं मामितो नेतुमिच्छसि।
सकाशं मानवेन्द्रस्य भर्तुर्मे प्लवगर्षभ॥

(वा.रा. ५/३७/३६-३२)

अर्थात् हे वानर यूथपति ! तुम इतने दूर के मार्ग पर मुझे कैसे ले चला चाहते हों! तुम्हारे इस दुस्साहस को तो मैं वारनोचित चपलता ही समझती हूँ; क्योंकि तुम्हारा कद तो बहुत छोटा है, फिर भी तुम मुझे राम के पास ले जाने की इच्छा रखते हो!

गोस्वामी तुलसीदास ने ‘मानस’ में इस प्रसंग को एक मँजे कलाकार की भाँति उकेड़ा है। शब्द-संकलन-कला में वह अपना सानी नहीं रखते। उनके पदों में संस्कृत से भी अधिक

लालित्य, बारीकी और गहराई परखी जा सकती है :

हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना।'

(मानस, ५/१५/६)

“प्यारे हनुमान! क्या सभी वानर तुम्हारे जैसे ही हैं।” सीता की जगह कोई और भी होता तो यही कहता। ऐसे टिगने-से वानर की पीठ पर बैठकर समुद्र लाँघने की बात तो कल्पना में भी दुष्कर है। उसे क्या पता था कि यह वही वानर है जो बालपन में सूर्य को पका हुआ फल समझकर लीलने दौड़ा था। खेल ही खेल में उछला था और वज्राघात से अचेत हो धरती पर जा गिरा था :

**जातमात्रेण ते पूर्व दृष्ट्वोद्यन्तं विभावसुम्।
पक्वं फलं जिघ्रैक्षामीत्युप्लुतं बालचेष्टया॥**

(अध्यात्मरामायण, ४/८/१८)

इस लघु शरीर वाले वानर को देखकर कोई यह क्यों विश्वास करने लगे कि वह सूर्य को निगल सकता है, पर्वत उठा सकता है या रावण सहित लंका को भी उठा ले जोन की सामर्थ्य रखता है; लेकिन हनुमान जी ज्ञानियों में अग्रण्य हैं। सब जान लेते हैं। वह सीताजी की किसी भी बात का बुरा नहीं मानते। उसे धैर्य बँधते हैं :-

**कछुक दिवस जननी धरु धीरा।
कपिन्ह सहित अइहहिं रघुवीरा॥
निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं।**

(मानस, ५/१५/४-५)

अर्थात् माँ! धैर्य धारण करो। प्रभु राम जल्दी ही आयेंगे। राक्षसों का विनाश कर तुम्हें हँसी-खुशी यहाँ से ले जाएँगे। इतने पर भी जब जानकी को विश्वास नहीं होता तब हनुमान् अपना विराट रूप दिखा देते हैं :

कनक भूधराकार सरीरा।

समर भयंकर अति बलबीरा॥

सीता मन भरोस तब भयऊँ।

पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ॥

(वही, ५/१५/८-९०)

अब, वाल्मीकि के हनुमान् की बारी है, जो तुलसी से भिन्न, नितानत स्वाभिमानी और गुस्सैल हैं। सीताजी हौले से उनके पौरुष को जगा देती है कि यह सब तुम्हारी चपलता है, और कुछ नहीं यह बात तीर की तरह हनुमान के कलेजे में चुभ जाती है। वह तिलमिला जाते हैं। इसे अपने लिए एक नया तिरस्कार या अपमान ही मानते हैं :-

**सीतायास्तु वचः श्रुत्वा हनूमान् मारुतात्मजः।
चिन्तयामास लक्ष्मीवान् नवं परिभवं कृतम्॥
न मे जानाति सत्त्वं वा प्रभावं वासितेक्षणा॥**

(वा.रा. ५/३७/३३-३४)

(कि हे सीते ! अप मेरे बल और पराक्रम को नहीं जानतीं। इसलिए आज मेरे उस रूप को देख लीजिए, जिसे मैं इच्छानुसार धारण कर सकता हूँ।)

तुलसी के हनुमान शौर्य और पराक्रम नहीं दिखाते। सीता मन मरोस तब भयऊँ'- सीताजी को भरोसा देते हैं, मन में धैर्य बँधाते हैं। उनके पर्वताकार दिव्य-स्वरूप को देखकर वह जान लेती है कि शक्ति, तेज और पराक्रम में हनुमान की कोई बराबरी नहीं कर सकता। उनमें पवन जैसी गति और अग्नि जैसा तेज है। निश्चय ही लंका के दुर्दान्त राक्षसों को चुनैती देनेवाला, मान-मर्दन करनेवाला यह कोई साधारण वानर नहीं है:

**जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजाना।
रुद्र देह तजि नेह बस वानर में हनुमाना॥
जानि राम सेवा सरस, समुझि करब अनुमाना।
पुरुष तें सेवक भए हरते ये हनुमाना॥**

(दोहावली, १४२/४३)

यह ठीक है कि हनुमान् सर्व-समर्थ हैं। वह भी राक्षसों का संहार कर सकते हैं। सीता को राम से मिला सकते हैं; किन्तु सीता को भी अपनी कार्यसिद्धि के बार में अवश्य विचार कर लेना चाहिए :

जानामि गमने शक्तिं नयने चापि ते मम।

अवश्यं सम्प्रधार्याशु कार्या सिद्धिरिवात्मनः॥

(वा.रा. ५/३६/४४)

क्योंकि हनुमान् की वायुवेग से छलांग लगाना उन्हें मूर्च्छित कर सकता है। वह उनके पृष्ठभाग से नीचे गिर सकती है। समुद्री जीवों की आहार बन सकती है। अथवा यहाँ से चोरी-छिपे निकलते समय ही उसपर किसी राक्षस की नजर पड़ गयी तो नया झमेला खड़ा हो सकता है। बनी बात बिगड़ सकती है। उसकी वजह से हनुमान् को राक्षसों के साथ अकेला युद्ध करना पड़ सकता है। इस फसाद में हनुमान् को कुछ हो गया तो वह कहीं की नहीं रहेगी। बाँस गया तो बाँसुरी भी न बजेगी। स्वामी के दर्शन की जो थोड़ी बहुत उम्मीद जगी है, वह भी जाती रहेगी।

हनुमान के साथ इस तरह चोरी-चोरी जाना, उनकी पीठ पर बैठना भी सीता को पतिव्रत्यधर्म के अनुकूल नहीं जान पड़ता। अपने स्वामी के होते वह किसी और के शरीर का स्पर्श स्वेच्छता से कैसे कर सकती है? हरण के समय तो उसकी विवशता थी। इसमें उसका क्या दोष?

और, सबसे दारुण तो यह है कि इस तरह हनुमान् के साथ जाने से तो राम की मिट्टी ही पलीद हो जायगी। उनका सारा पुरुषार्थ मिट्टी में मिल जायगा। दोनों घराने की कीर्ति नष्ट हो जायगी। कल को कोई उनका नाम लेवा भी न रहेगा। एक तो लंका में रहकर वह ऐसे ही रघुवंशियों की नाक कटवा रही है। नहीं, नहीं!

उसे ऐसा-वैसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे राम के नाम को बट्टा लगे। ऐसे कई प्रश्न जानकी के मन को मथने लगे।

दूध की जली बिल्ली मट्ठा भी फूंक कर पीती है। सो, उसे दंडकवन वाली घटना याद आ जाती है, जब राम ने एक कामुकी के नाम-कान कटवा लिए थे:-

सीतहि समय देखि रघुराई।

कहा अनुज सन सयन बुझाई॥

लक्षिमन अति लाघव से।

नाक-कान बिनु कीन्हि।

(मानस ३/१६/१७)

राम की जल्द बाजी को मोल वह अभी तक चुका रही है। निर्दोष ही नारकीय यंत्रणाएँ झेल रही है। इसलिए हनुमान् जी से साफ-साफ कह देती है कि वह चोरी-छिपे नहीं जायगी :

कामं त्वमपि पर्याप्तो निहन्तुं सर्वराक्षसान्।

राघवस्य यशो हीयेत् त्वया शस्तैस्तु राक्षसैः॥

(वा.रा. ५/३७/५७)

अर्थात् हे वानर! यद्यपि तुम भी संपूर्ण राक्षसों का संहार करने में समर्थ हो तथापि तुम्हारे द्वारा राक्षसों का वध होने से राम के सुयश में बाधा आएगी। लोग तो यही कहेंगे कि राम कुछ नहीं कर सके।)

हनुमान भी राक्षसों का संहार करने तथा सीता को ले जाने में समर्थ हैं; किन्तु तब उनके स्वामी की शक्ति-सामर्थ्य को कौन जानेगा? उनका शौर्य-पराक्रम नहीं। रघुकुल-नारि पर कोई अत्याचार करे और रघुवंशी टुकुर-टुकुर देखे, उसे दण्ड न दे तो यह उसके लिए डूब मरने की बात है :

अदण्ड्यान दण्डयन् राजा

दण्डयांश्चैवाप्य दण्डयन्।

अयशो

महदाप्नोति

नरकं

चैव गच्छति॥

(मनुस्मृति, १२८)

जानकीजी को याद है। एक बार उसके स्वामी ने साधारण अपराध करनेवाले कौए पर भी ब्रह्मस्त्र चला दिया था, फिर अपनी भार्या का अपहरण करनेवाले राक्षस को वह जिन्दा कैसे छोड़ सकते हैं। राम के होते कोई और सीता का उद्धार करे, यह उसे बिल्कुल, पसन्द नहीं। 'हे राम! ऐसा तो वह सोच भी नहीं सकती।' इसलिए वह चाहती है कि श्रीराम आएँ। लंका को पददलित कर राक्षसोंसहित रावण का संहार कर उसे यहाँ से ले जायँ। यही उनके योग्य कार्य होगा :

यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम्।
मामितो गुह्य गच्छेत् तत् तस्य सदृशं भवेत्॥

(वा.रा. ५/३७/६४)

किन्तु; गोस्वामी तुलसीदास की कविता तो निराली है:

अबहिं मातु मैं जाऊँ लवाई।
प्रभु आयुस नहिं राम दोहाई॥

(मानस, ५/१५/३)

यहाँ माता का नाता अपनापन की अधि कता को वाणी देता है। हनुमान सीता को 'देवी' नहीं, माँ कहकर पुकारते हैं। माता का नाता ही कुछ ऐसा है, जहाँ गाजर-मूली की तरह कटकर वानर भी अपनी सीता मैया को परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त करते हैं।

सो जो हो, यह सर्वान्तःकरण से समर्पित हनुमान् वाल्मीकि में दूँढे नहीं मिलेगा। पूरे भक्ति-युग में ऐसा एक ही तेवर महाकवि सूरदास रचित 'सूरसागर' के

'अबै मिलाऊँ तुम्हें 'सूर' प्रभु।'

पद में देखा जा सकता है। 'सूरसागर' में यह प्रसंग अनुपद वर्णित है :

जननी हैं अनुचर रघुपति कौ।

आग्या होइ, देउँ कर-मुँदरी,
कहाँ सन्देसों पति कौ।
मति हिय बिलख करौसिय,
रघुबर हति हैं कुल दैयत कौ॥
कहौ तो लंक उखारि डारि
देउँ जहाँ पिता संपति कौ।
कहौ तो मारि-सँहारि निसाचर,
राबन करौ अगति कौ।
सागर तीर भीर बनचर की,
देख कटक रघुपति कौ।
अबै मिलाऊँ तुम्हें 'सूर' प्रभु'
राम रोष डर अति कौ॥

(८/७४)

भक्त सूर के हनुमान् जगज्जननी जानकी के सामने अंजलि बाँधे अत्यन्त विनम्र और समर्पित मुद्रा में कहते हैं कि वह तो निमित्त मात्र है। लोग झूठ ही उसकी बड़ाई करते हैं। कर्त्ता-धर्ता तो प्रभु राम हैं। ऐसे किसी भी कार्य में उसकी कोई बहादुरी नहीं है। वह बहुत हाथ-पाँव मारेगा तो इस डाली से उसी डाली पर छलाँग लगाएगा। एक वानर की हैसियत ही कितनी ? स्वामी की कृपा हुई तो पलक झपकते निशाचरों का संहार हो सकता है। रावण की गति भी कुँठित हो सकती है।

इशारे भर की देर है। समुद्र के पार वानरों की विशाल सेना खड़ी है; किन्तु वह सेवक की मर्यादा जानते हैं। अपने दौत्य-धर्म को भली भाँति समझते हैं। अपने स्वामी का सन्देश, उनकी कर मुद्रिका सीता को देने तक ही उनके कर्त्तव्य की सीमा है। निम्न पद में सेवक और दौत्य-धर्म का सुन्दर समन्वय दर्शनीय है :

'डर पत हों आज्ञा अपमानहिं।'

(सूरसागर, ८१७५)

किन्तु, 'अबहिं मातु मैं जाऊँ..... ।' का और अधिक चमत्कार पैदा करने वाला है। पद के पहले चरण में हनुमानजी का प्रस्ताव है और दूसरे चरण में निषध-प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई।' यह निषेधात्मक कथन पूर्व के प्रस्ताव को उसी क्षण खंडित कर देता है। हनुमानजी का कहना है कि हे मातः! आपका वियोग जन्य दुःख असह्य है? मुझसे देखा नहीं जाता। मैं आपको साथ ही लिए जाता और श्रीराम के चरणों में रखकर ही दम लेता; किन्तु 'प्रभु आयसु नहिं'- अर्थात् प्रभु की ऐसी आज्ञा नहीं है। ऐसा करना उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना है। आपको साथ लिए जाने से राम के बल वीर्य, प्रताप-प्रभाव-सब एक साथ ही नष्ट हो जायेंगे। इसलिए हनुमान जी राम की शपथ या दोहाई देकर अपना प्रस्ताव लौटा लेते हैं। अर्धाली में 'प्रभु' पद का प्रयोग बड़ा ही सार्थक, उपयुक्त और आकर्षक है।

'प्रभु' पद से यह जनाया है कि राम साक्षात् ईश्वर हैं। उनकी सामर्थ्य अनन्त है। वह गरल को सुधा और सिन्धु को गोपड बना सकते हैं :

हरिजू, तुम तैं कहा न होइ?

(सूर-विनय-पत्रिका, १५५)

अथवा

मूक होइ बाचाल

पंगु चढइ गिरिबर गहन।

जासु कृपां सो दयाल

द्रवंउ सकल कलि मल दहन॥

(मानस, १/१)

प्रभु करुणा सागर और कृपासिन्धु हैं। वह समर्थ होकर भी कोमलचित और करुणार्द्र हैं। उनकी कृपा भक्त के लिए सदा सुदल है। इसी

से अपने स्वामी को 'कर्तमुकतुमन्यथा सर्व समर्थ' समझकर हनुमानजी अपना प्रस्ताव लौटा लेते हैं। अब, जब वह अपना प्रस्ताव ही लौटा लेते हैं, तब उनके औचित्य और अनौचित्य का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है।

इसके साथ ही एक दूसरे प्रश्न मन को मथता है कि सीतान्वेषण के समय जब राम ने हनुमानजी से कुछ कहा ही नहीं, तब गोस्वामी जीने 'प्रभु आयसु' पड़ क्यों दिया?

इस सम्बन्ध में यहाँ कहना है कि साहित्य रस-सृष्टि है और रसकी व्यंजना ही हो सकती है। मुँह से कहने पर रस भंग होता है और उलट पुलट कर कहने से तात्पर्य सिद्ध नहीं होता। अतः विशेष रूप से रस और भाव की अभिव्यक्ति के लिए व्यंजना शक्ति को स्वीकार करना ही पड़ता है। व्यंजना अभिव्यंजना मात्र को सरस और सुन्दर बना देने की सामर्थ्य रखती है। इसलिए वाच्य, वस्तु और अलंकार की अपेक्षा व्यंग्य वस्तु और अलंकार अधिक बौधक होते हैं।

'श्रीरामचरित मानस' में भी श्री सीताजी के प्रति जो सन्देश हैं, उसमें ऐसा कुछ स्पष्ट नहीं है कि हनुमानजी जानकी को अपने साथ ले जाएं; यहाँ उनके अर्थ ही व्यंजना हुई है :

पाछें पवन तनय सिरु नावा।

जानि काज प्रभु निकट बोलावा॥

परसा सीस करोरुह पानी।

कर-मुद्रिका दीन्हि जन जानी॥

बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु।

कहि बल बिरह बेगि तुम्हें आएहु॥

(४/२२/८-१२)

इससे स्पष्ट है कि राम ने हनुमानजी को अपनी अँगूठी दी। सिर पर हाथ फेरा-उन्हें दुलराया। बहुत प्रकार से सीताजी को समझाने-बुझाने, विविध प्रकार के आश्वासन देने, धैर्य बँधाने का आदेश

दिया और सन्देश पहुँचाकर तुरत लौट आने को कहा।

‘दीन्हि जनजानी’ पङ्क्ति से मानसकार ने यह जनाया कि हनुमानजी राम के अत्यन्त प्रिय है, निकट हैं। अपने जन हैं- आत्मीये हैं। अपना आदमी सबके जाने के बाद जाता है। इसी से हनुमान जी श्रीराम के चरणों में सिर नवाकर सबसे अन्त में विदा होते हैं।

दूसरा पद है- ‘निकट बोलावा।’ अर्थात् हनुमानजी स्वयं को- सबहिं मानप्रद आपु अमानी’ मानते हैं। इसी से हनुमानजी प्रभु के चरणों में सिर नवाकर जब चलने लगते हैं; तब प्रभु उन्हें फिर बुलाते हैं। कान से लगकर गुप्त सन्देश देते हैं।

‘अध्यात्म रामायण’ में हनुमान् जी को चलते-चलते राम ने कुछ कहा है-

गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत्।
(४/६/२८)।

‘आनन्द रामायण’ में भी करमुद्रिका देते समय श्रीराम ने हनुमानजी के द्वारा अपना नितान्त गोपनीय सन्देश भेजा है:

ततो रामो मुद्रिकां स्वां ददौ मारुति सत्करे।
मन्नामाक्षर युक्तेयं सीतायै दीयतां रहः॥
(सा० का० ८/८३)

कि हे हनुमान्! यह मेरे नाम से अंकित अँगूठी सीताजी को एकान्त में देना।

उपरोक्त श्लोक में यह स्पष्ट आदेश है कि राम की अँगूठी सीताजी को एकान्त में दी जाय। क्योंकि विरहावस्था में विरहिणी की प्राण रक्षा तो मात्र मिलन की आशा के एक तन्तु पर निर्भर करती है। कालिदास याद आते हैं :

आशाबन्धः कुसुम सदृशः प्रायशो ह्यङ्गनानां।
सद्यः पाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगै रुणद्धि।
-मेघदूत

अर्थात् वियोगावस्था में कुसुम कोमल आशाबन्ध ही प्रणयि हृदय को विदीर्ण होने से बचा लेता है।

स्वामी की कर मुद्रिका भी सीता जी के लिए मृत संजीवनी का काम करेगी। अन्यथा वह तो किसी भी उपाय से प्राण त्याग करने पर उतारू हैं। उन्होंने तो हठ कर ली है कि पति से बिछुड़कर वह किसी भी तरह जीवित नहीं रहेंगी

:

सञ्जीवितं क्षिप्रमहं त्यजेयं

विषेण शस्त्रेण शितेन वापि।

विषस्य दाता न तु सोऽस्ति कश्चि-

च्छस्यस्य वा वेश्मनि राक्षसस्य॥

(वा० रा० ५/२८/१६)

अर्थात् मैं शीघ्र ही किसी तीक्ष्ण शस्त्र या विष से अपने प्राण त्याग दूँगी; परन्तु इस राक्षस के यहाँ मुझे कोई विष या शस्त्र देनेवाला भी नहीं है।

वह तो अपने मनुष्य होने पर भी खेद प्रकट करती है:

धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम्।

न शक्यं यत् परित्युक्तमात्मच्छन्देन जीवितम्॥

(वही, ५/२५/२०)

अर्थात् कि ऐसे मनुष्य-जीवन और परवशता को धिक्कार है, जो इच्छानुसार मर भी नहीं सकता।

सो जो हो, श्री राम ने बहुत सारे सन्देश भेजे हैं। ‘गीतावली’ में तो ऐसे कई पद हैं। सीताजी को विरह-वेदना से व्याकुल देखकर हनुमान जी कहते हैं:

रघुपति कर सन्देशु अब

सुनु जननी धरि धीर।

अस कहि कपि गदगद् भयउ

भरे विलोचन नीर॥

(५/१४/१४)
गोस्वामी जी की सीता अपने स्वामी का सन्देश सुनकर प्रेम में ऐसे निमग्न हो जाती है, जहाँ उन्हें अपनी भी सुधि नहीं रहती:

प्रभु सन्देश सुनत बैदेही।

मग्न प्रेम तन सुधि नहीं तेही॥

(मानस, ५/१४/८)

किन्तु; 'प्रभु आयसु नहीं' के सन्दर्भ में यहाँ 'तुम्ह आएहु' पद विचारणीय है। 'कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु' अर्धाली में तो स्पष्ट आदेश है कि तुम ही आना, जानकी को साथ नहीं लाना। लगता है, इसी से हनुमान् जी ने 'प्रभु आयसु नहीं' कहकर अपना प्रस्ताव लौटा लिया।

अस्तु, रामायणादि ग्रन्थों में हनुमानजी द्वारा सीताजी को जो सन्देश भेजे गए हैं, उनमें

कहीं ऐसा आदेश नहीं मिलता कि हनुमान् जानकी को अपने साथ लिवा लाएँ। आदिकवि ने अपनी 'रामायण' में हनुमान् जी के इस प्रस्ताव के निषेध में विस्तार से लिखा है; किन्तु गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रसंग को छुआ भर है और एक सधे कलाकार की भाँति इसे मिट्टी से सोना बना दिया है। सारे भाव 'आबहिं' पद में ही समा गए हैं। कितनी सम्भाल है, देखिए :

अबहिं मातु मैं जाऊँ लबाई।

प्रभु आयसु नहीं राम दोहाई॥

अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
एस० एस० पी० एस० कॉलेज,
पो० - शम्भुगंज,
जिला - बांका (बिहार)

विष्णु-स्तुति

देवोत्थान एकादशी के उपलक्ष्य पर

ब्रह्मेन्द्ररुद्रैरभिवन्द्यमानो भवानृषिर्वन्दितवन्दनीयः ।

प्राप्ता तवेयं किल कैमुदाख्या जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ । ।

मेघा गता निर्मलपूर्णचन्द्रशारद्यपुष्पाणि मनोहराणि ।

अहं ददानीति च पुण्यहेतोर्जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ । ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते ।

त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितं भुवनत्रयम् । ।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद और उनकी अंतिम इच्छा

‘कृष्णार्पणमस्तु’

डॉ० एस० एन० पी० सिन्हा

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के नेतृत्व में देश के लिए समर्पित स्वतंत्रता सेनानियों एवं स्वातंत्र्योपरान्त गाँधी-दर्शन के मूल्यों को राजनीतिक सिद्धान्तों तथा आचारों के धरातल पर आजीवन जीवन्त बनाए रखने वाले राजनेताओं में भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद सर्वप्रमुख रहे। ऐसे राजनेता के सादगीपूर्ण जीवन एवं निर्लिप्त सेवा-धर्म से राजनीति के दामन में गौरव के पुष्प खिला करते हैं।

भारतमाता

के इस सन्त प्रवृत्ति के सपूत का अध्यात्मवाद में अगाध विश्वास था। एक प्रकार से उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं समग्र जीवन-मूल्य ही इसी अध्यात्मवाद के ताना-बाना से बुना

हुआ था। उन्होंने अपने जीवन में गाँधीवाद को आत्मसात कर सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा एवं सेवा की भावना को केन्द्र में रखकर अपने सभी कर्तव्यों का सफल निर्वाह किया। मृत्युपूर्व ‘कृष्णार्पणमस्तु’ नाम से जो उन्होंने अपनी अंतिम इच्छा लिखी, उस दस्तावेज के मनन से स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर के प्रति उन्होंने अपनी अंतिम इच्छा लिखी, उस दस्तावेज के मनन से स्पष्ट है

कि ईश्वर के प्रति उनकी आस्था ‘श्रीमद्भागवतगीता’ के ‘कर्मयोग’ ‘निष्काम कर्म’ एवं ‘राजयोग’-‘कर्म-फल को छोड़ो मत, बल्कि अपना सकल कर्म ईश्वर को अर्पण कर दो’ से सम्पृक्त थी। ‘गीता’ में एक श्लोक आया है:-

‘यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व पदर्पणम्॥’

(गीता - ६/२१)

अर्थात् हे अर्जन! तू जो भी कर्म करता

है, हवन करता है,

जप-तप करता है,

दान देता है; वह

सब मुझे अर्पित

कर। अर्थात् जो

मनुष्य सत्त्व

र्म-स्वकर्म पालन

सेवा-समर्पण भाव

से करता है, वह

ईश्वरीय है, क्योंकि

वे ही सब भूतों में समभास से व्याप्त है, (‘समोऽहं सर्वभूतेषु.....’)। गीता-प्रवचन में सन्त बिनोवा भावे ने भी कहा है- “अंतिम क्षण तक सतत् सेवा-कार्य होता रहे-पूर्णरूपेण समर्पण भाव से हृदयाकाश में जरा भी आसक्ति न हो, बुद्धि सतेज हो- इस तरह सतत साधनारत मनुष्य की मृत्यु होगी; वह परमात्मा में लीन हुआ समझो। ऐसा मंगलमय अन्त लाने के लिए दिन-रात

प्रत्येक वर्ष ३ दिसम्बर को पटना के पावन गंगा तट स्थित समाधि-स्थल पर श्रद्धा-सुमन अर्पित करने के क्रम में इस दस्तावेज को आद्योपान्त पढ़ते हुए मैंने स्वतः स्फूर्त रूप में एक दिव्य प्रेरण का अनुभव किया है। इससे हमें अपने प्रति, परिवार-समाज और राष्ट्र के प्रति कृतज्ञ भाव से लोक-सेवा करने की तो अन्तः प्रेरणा मिलती ही है, साथ ही तमाम तरह की प्रतिरोधी परिस्थितियों में एक ऊर्जावान मशाल की तरह सत्कर्म और सन्मार्ग का दिशा-निर्देश भी मिलता है।

-लेखक की लेखनी से

हर पल 'कृष्णार्पणमस्तु' भाव से स्वधर्म पालन करते रहना चाहिए। कर्म यदि शुद्ध-बुद्ध-शान्त-समभाव-स्थितप्रज्ञ और निष्काम भावना से सेवामय हो, तो वह 'यज्ञ रूप' ही है।

शास्त्रों में देश, समाज, संस्कृति, धर्म और परोपकार करने वाले व्यक्ति को ही 'याज्ञिक' की संज्ञा दी गई है और ऐसे ही व्यक्तियों को देवता (अर्थात् देनेवाला) भी कहा गया है। समस्त शुभकर्म 'यज्ञ' ही होते हैं। डॉ. सर्वपल्ली राधकृष्णन् ने 'गीता' के कर्मवाद दर्शन की व्याख्या में कहा भी है- "... यहाँ तक कि जो मुक्त हैं, उन्हें भी संसार में विश्वबुधुत्व के लिए सतत कार्य करना चाहिए, विश्व की भलाई के लिए लोक-संग्रह करना चाहिए, ईश्वर की महिमा के लिए कर्म करना चाहिए। ('तेन प्राप्तुवन्ति मामेव सर्वः') जगतहिताय कृष्णमय गीता योगशास्त्र है- 'योगः कर्म कौशलम्' अर्थात् कर्म में निपुणता ही योग है। 'समत्वम् योग उच्यते' अर्थात् समत्व ही योग है। श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं। वे कर्म के ईश्वर हैं।" अतः 'महाजनो जेन गताः स पन्था' दर्शन के अनुसार कर्म निष्पादन करने वाले कर्मयोगी हैं।" श्री, विजय, विभूति और अचल नीति' विश्व में स्थापित करनेवाले होते हैं- "तत्र श्रीविजयोभूतिध्रुवा नीतिर्मतिर्ममा।" अतः जीवन के समस्त पवित्र कर्मों को परमेश्वर को अर्पित करने से जीवन में ईश्वरीय सामर्थ्य आ जाता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है अर्थात् समस्त बन्धनों से मुक्ति- ईश्वर, मोक्ष या आत्म की मुक्त अवस्था- तीनों एकार्थक है। यथा-
**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विदन्ति तच्चृणु॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विदन्ति मानवः॥**

(गीता- १८/४५-४६)

अर्थात् अपने-अपने कर्म में लगे रहकर वह किस प्रकार से सिद्धि प्राप्त करता है, उसका उपाय तू मुझसे सुन..... जिस सत्ता से सर्वभूतों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सारा जगत व्याप्त है, उस परमेश्वर को अपने कर्म द्वारा सेवा कर मनुष्य परमसिद्धि को प्राप्त कर लेता है यानी 'सत्कर्म- स्वधर्म पालन' द्वारा परम शांति को पा लेता है। इस आलोक में देखें, तो वास्तव में बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने अपने जीवन के समस्त कार्यों को ईश्वरार्पण भाव एवं सतेज बुद्धि से निष्पन्न किया। उन्होंने अपने सकल कर्म सात्विक वृत्ति से मन, वचन और कर्म द्वारा संपादित किया। कहना चाहिए कि उनका सम्पूर्ण जीवन ही यज्ञमय था, इसलिए वे 'मुक्त-शुद्ध-बुद्ध' महामानव थे। विलक्षण व्यक्तित्व के कर्मयोगी थे।

- भगवान श्रीकृष्ण ने 'गीता' में कहा है-

यद्यद्विभूतिमत्सत्तवं श्रीमदूजितिमेव वा।

तत्तदेवागच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम्॥

(गीता- १०/४१)

अर्थात् 'जहाँ कहीं किसी असाधारण शक्तिसम्पन्न एवं पवित्र आत्मा को मानव जाति के उत्थान के लिए यत्नशील देखो, तो यह जान लो कि वह मेरे ही तेज से उत्पन्न हुआ है। मैं उसके माध्यम से कार्य कर रहा हूँ।' इस दृष्टि से देखने पर राजेन्द्र बाबू की कर्मपरायणता का भाव अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का केन्द्र जान पड़ता है। उनके बाल्यकाल, छात्र-जीवन, सामाजिक और राजनीतिक जीवन की दिव्य तेजस्विता उनके अलौलिक व्यक्तित्व को ही पुष्ट करता है। राष्ट्रपति भवन में लम्बे समय तक के अपने प्रवास में जिस सादगी और ऋजुता का परिचय उन्होंने

दिया, वह पूरी दुनिया के इतिहास में एक विरल उदाहरण है। मृत्युपूर्व लिखी 'अंतिम इच्छा', जो उनके समाधि-स्थल पर भी एक दस्तावेज के रूप में अंकित है, का अक्षर-अक्षर हमें अपने कर्मफल ईश्वर को समर्पित रूप में करने की प्रेरणा देता है। प्रत्येक वर्ष ३ दिसम्बर को पटना के पावन गंगा तट स्थित समाधि-स्थल पर श्रद्धा-सुमन अर्पित करने के क्रम में इस दस्तावेज को आद्योपान्त पढ़ते हुए मैंने स्वतः स्फूर्त रूप में एक दिव्य प्रेरण का अनुभव किया है। इससे हमें अपने प्रति, परिवार-समाज और राष्ट्र के प्रति कृतज्ञ भाव से लोक-सेवा करने की तो अन्तः प्रेरणा मिलती ही है, साथ ही तमाम तरह की प्रतिरोधी परिस्थितियों में एक ऊर्जावान मशाल की तरह सत्कर्म और सन्मार्ग का दिशा-निर्देश भी मिलता है। राजेन्द्र बाबू की 'अंतिम इच्छा' के इस दिव्य दस्तावेज को मूल्यवान विरासत समझकर यहाँ ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर रहा हूँ, ताकि दिव्य प्रकाश का लाभ आम जन को भी मिल सके।

राजेन्द्र बाबू की अंतिम इच्छा :

'कृष्णार्पणमस्तु'

“हे भगवान, तुम्हारी दया असीम है, तुम्हारी कृपा का कोई अन्त नहीं है। आज मेरे ७० वर्ष पूरे हो रहे हैं, तुमो मेरी त्रटियों की ओर निगाह ने करके अपनी दया की वर्षा मुझ पर हमेशा की। इन सत्तर वर्षों में जितना सुख, मान-मर्यादा, धन, पुत्र इत्यादि जितने समाज में सुख और बड़प्पन के समझे जाते हैं, सब तुमने विपल मात्रा में दिया। मैं किसी योग्य नहीं था, तो भी तुमने मुझको बड़ा बनाया। यह कृपा बचपन से ही मेरे ऊपर रही। सबसे छोटा बच्चा होने के कारण मेरे ऊपर माता-पिता तथा घर के दूसरे

लोगों का अधिक प्रेम रहा करता था।

पढ़ने में भी जिस योग्य नहीं था, उतना ही यश और प्रसिद्धि अनायास मेरे बिना परिश्रम और इच्छा के दी, घर में आर्थिक कठिनाइयाँ होते हुए भी मुझे कभी उसका अनुभव नहीं होने दिया, जैसे पिता वैसी ही माता- देवता-देवी तुल्य हर तरह से हमको सुखी बनाने वाले, हमारे ऊपर प्रेम की वर्षा करते रहे। भाई ऐसा मिला जैसा किसी को भी शायद नसीब हुआ हो, जिसने मेरे ऊपर ठीक उसी तरह छत्र-छाया करके केवल न कष्टों से बल्कि सभी प्रकार की चिंताओं से मुक्त रखा, जिस तरह कृष्ण ने गोवर्द्धन को उठाकर गोप-गोपियों को इन्द्र के कोप से सुरक्षित रखा और अपने ऊपर सभी कष्टों को ले लिया- पर इस भावना से कि यदि मुझे उसका अनुमान तो मैं दःखी होऊँगा-मुझे कभी भी उसका आभास तक नहीं होने दिया। बच्चों को इस तरह पाला, जिस तरह कोई भी पिता अपने बच्चों को नहीं पाल सकता है। मनमाना अपने आदर्शों और विचारों पर चलता रहा जिसका प्रभाव उनके जीवन पर कष्ट के रूप में ही, मैं समझता हूँ पड़ता रहा होगा, पर उन्होंने कभी यह नहीं जाहिर होने दिया कि वह मुझसे कुछ दूसरा करवाना चाहते थे या आशा रखते थे। बराबर मुझे अपनी इच्छा और भावना के अनुसार चलने देना ही अपने लिए आनन्द का विषय बना रखा था और यह कृत्रिम नहीं था- स्वाभाविक था। उनके लिए मेरे को खुश रखने के समान और दूसरा कोई आनन्द का विषय नहीं था। मैं अपने ढंग से विकसित होऊँ, ऊँचे उठ सकूँ- यही उनके लिए सबसे अधिक प्रिय स्पष्ट था और इसी को उन्होंने चरितार्थ किया। घर के लोगों के अलावा संसार ने भी मेरे ऊपर जितनी कृपा रखी, शायद

दूसरों पर नहीं रखी। यह तुम्हारे ही पथ-प्रदर्शन संसार ने भी मेरे जितनी कृपा रखी, शायद दूसरों पर नहीं रखी। यह तुम्हारे ही पथ-प्रदर्शन का फल है कि ध्यान मेरी त्रुटियों और अयोग्यताओं और कमजोरियों की ओर नहीं गया और सबों ने मुझे केवल आदर, सम्मान ही नहीं दिया, मुझे यश भी दिया, जिस यश का मैं न तो अपने को कभी अधिकारी हो समझता और न योग्य। घर में और बाहर सबकी कृपा का पात्र बना रहा और इस प्रकार कोई भी ऐसी लालसा मुझे नहीं रह गई, जो किसी भी मनुष्य को हो सकती है। लालसा हो या न हो, कोई भी मनुष्य जो भी लालसा कर सकता है, सब मुझें बिना लालसा के अनायास ही तुमने दिया और देते जा रहे हो। मैं तुम्हारी इस दया-दृष्टि को बनाए रखने के लिए क्या प्रार्थना करूँ! तुमने आज तक बिना मांगे ही सब कुछ दिया है। मैं जानता हूँ कि आगे भी यह बिना मांगे ही बनाए रखोगे।

घर में सती-साध्विनी पत्नी, सुशील-आज्ञाकारी लड़के-लड़कियाँ और दूसरे सगे-संबन्धी हमें सुख देना ही अपना कर्तव्य मानते हैं। इस अवस्था में भी मैं अपने ढंग से, अपनी इच्छा के अनुसार ही काम करता, उनकी परवाह नहीं करता और न उनके सुख-दुःख की चिन्ता करता, पर तो भी उनका प्रेम वैसा ही असीम। अधिक मैं क्या कहूँ अब एक ही भीख माँगनी है- मेरी बाकी दिनों को तुम अपनी ओर खींचने में लगाओ। मैं सांसाकिर रीति से बहुत सफल अपने जीवन में रहा, पर आध्यात्मिक रीति से भक्ति में तुम्हारे ओर कुछ भी नहीं बढ़ सका। पथ बताने वालों की कमी कभी नहीं रही।

महात्मा जी से बढ़कर कौन हो सकता है ! उकनी कृपा भी असीम रही। यदि मुझमें कुछ भी शक्ति होती तो मैं उनका सच्चा अनुयायी बन सकता था, पर उनकी कृपा और उनके संपर्क का सांसारिक लाभ जो किसी को भी मिल सकता था, मैंने प्रचुर मात्रा में पाया। उनके आध्यात्मिक और भगवत्-भक्ति में से मैं कुछ भी नहीं ले सका और न अपने जीवन को किसी भी तरह उनके साँचे में ढाल सका। यदि कभी वह मुझे तौलते तो देखते कि मुझमें सच्चा वजन कुछ भी नहीं है। जिस तरह तुमने कभी तौल कर मुझे योग्यता के अनुसार कुछ नहीं दिया, बल्कि बिना तौले ही विपुल मात्रा में सब कुछ देते रहे- सब कुछ सुख-समृद्धि, धन-वंश, मित्र-सेवक और सबसे अधिक यश बराबर देते रहे, उसी तरह उन्होंने भी बिना तौले ही दिया- जो कुछ मैं आज सांसारिक दृष्टि से पाया बनाया।

क्या अब भी मुझे अपनी ओर नहीं खींचोगे? जीवन को सच्चा आध्यात्मिक नहीं बनाओगी? क्या बाकी दिन भी यश और सांसारिक समृद्धि लूटने में ही बिताने होंगे और मुझे ऐसे कर्म न कराओगे, जो मुझे तुम्हारी ओर ले जाए? यदि कृपा है तो उस ओर खींचो और उस ओर ले चलो और जो मुझे आज बिना कारण मिल रहा है, उसको सचमुच सार्थक बनाओ। पर मुझे सचमुच इन सबको छोड़कर भी अपनी ओर खींचो और उसी दया-दृष्टि से एक बार मेरी आँखों को खोल दो, जिसमें तुम्हारे सच्चे आनन्दमय दर्शन पा सकूँ।” - डॉ० राजेन्द्र प्रसाद (समाधि स्थल, बाँसघाट, पटना से उद्धृत)

सम्पर्क:-

बी-६२, पी.सी.कॉलोनी,
लोहिया नगर,
पटना-८०००२०

रामतापिन्युपनिषद् में श्रीराम का दार्शनिक स्वरूप

परम्परा से प्राप्त १०८ उपनिषदों में रामतापिन्युपनिषद् औपनिषदिक शैली में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के दार्शनिक स्वरूप का विवेचन करता है।

चित् स्वरूप महाविष्णु भगवान् ने जब दशरथ के पुत्र के रूप में रघुकुल में जन्म लिया तब इस पृथ्वी पर अवतरित होकर सब कुछ इन्होंने प्रदान किया और लोगों के बीच सुशोभित हुए अतः विद्वानों के द्वारा वे राम के नाम से अभिहित हुए। अथवा राक्षसगण जिनके प्रताप से मार डाले गये अथवा जो संसार में अभिराम हैं, सुन्दर हैं अथवा जिस प्रकार राहु विराट् पुरुष के मन से उत्पन्न चन्द्रमा (चन्द्रमा मनसो जातः ऋ० / पुरुषसूक्त) का तेज नष्ट कर देते हैं इसी प्रकार मनुष्य के रूप में राक्षसों का तेज नष्ट कर राज्य करने के योग्य राजाओं को जिन्होंने अपने चरित्र से धर्म का मार्ग दिखाया, अपने नाम मात्र से ज्ञान का मार्ग दिखाया; ध्यान से वैराग्य का मार्ग प्रशस्त किया तथा पूजन से इन्हें ऐश्वर्य प्रदान किया वे इस संसार में श्रीराम के नाम से प्रसिद्ध हुए।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।

इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते।।६।।

अर्थात् योगीगण जिस अनन्त स्वरूप, नित्य आनन्दस्वरूप तथा चिन्मय परब्रह्म में ध्यान के द्वारा रमण करते हैं वे श्रीराम के नाम से जाने जाते हैं।

इस उपनिषद् में 'राम' शब्द के अनेक अर्थ कहे गये हैं - १. रा= राति (प्रदान करते हैं) म= मही स्थितः (पृथ्वी पर अवस्थित होकर) २. रा= राजते (सुशोभित होते हैं) म= महीस्थितः ३. रा= राक्षसाः,

म= मरणं यान्ति (मारे जाते हैं) ४. राम= अभिराम (सुन्दर) ५. रा= राक्षसान्, म= मर्त्यरूपेण (मनुष्य के रूप में) ६. रा= राहू, म= मनसिज (चन्द्रमा) ७. रा= राति (देते हैं), म= महीभृताम् (राजाओं को) ८. राम= योगीगण जिनमें रमण करते हैं (रम् धातु से व्युत्पन्न प्रातिपदिक)]

ब्रह्म एक ही हैं; चैतन्य स्वरूप हैं; वे निराकार एवं कलाओं से रहित है किन्तु अपने भक्तों का कार्य करने के लिए आकार ग्रहण करते हैं। ऐसे रूप धारण करनेवाले देवताओं में पुल्लिंग, स्त्रीलिंगता तथा अस्त्र आदि कल्पना की जाती है। ऐसे देवताओं के दो, चार, छः, आठ, दस, वारह, सोलह एवं अठारह हाथ कहे गये हैं जिनमें शंख, खड्ग आदि सुशोभित रहते हैं। इनके रंग वाहन शक्ति और सेना तो हजारों हैं। इस तरह पाँच प्रकार से शरीर धारण करने वाले ब्रह्म के सेना आदि का निर्धारण शास्त्रों में किया गया है।

औपनिषदिक शैली से हटकर आगम की शैली में इस उपनिषद् में मन्त्र जप कर सिद्धि और त्राण पाने की बात कही गयी है। श्रीराम के मन्त्र का प करने का निर्देश देते हुए इसे ब्रह्मा विष्णु एवं महेश का वाचक कहा गया है जो शब्द के अर्थों के द्वारा प्रकट होता है। मन्त्र क्रिया, कर्म एवं पूजक के उद्देश्यों को प्रकट करता है। जिसका चिन्तन करने से पाप, कष्ट आदि से रक्षा होती है वही मन्त्र है। वह सभी अर्थों को प्रकट करता है।

जिनके समीप रहने पर भय नामक कोई वस्तु नहीं होती है ऐसे देवताओं की मूर्ति के रूप में यन्त्र की कल्पना शास्त्रों में की गई है। यदि विना

यन्त्र की पूजा की जाए तो देवता प्रसन्न नहीं होते हैं।

श्रीराम में स्वः (स्वर्ग), भूः (पृथ्वी) एवं ज्योति (तेज) ये तीनों समाहित हैं; इनके अनन्त स्वरूप हैं तथा अपने ही प्रकाश से प्रकाशित हैं। ये इत्पत्ति

विशाल बाण एवं तलवार धारण करनेवाले, हे रघुवीर, हे नृपश्रेष्ठ, हे रावण का संहार करनेवाले आप हमारी रक्षा करें तथा अपनी सम्पत्ति हमें प्रदान करेंगे किन्तु इस समय शीघ्र हमारे शत्रुओं (राक्षसों) का संहार करें।' इस तरह देवतागण उनकी स्तुति कर उनके साथ सुखपूर्वक रहने लगे।

हे ऋषिगण, जब देवताओं ने इस प्रकार से श्रीराम की स्तुति की तब राक्षसों के वंशज रावण ने वन में स्थित श्रीराम की भार्या सीता को अपने मोक्ष के लिए अपहृत कर लिया। इस तरह वह रावण कहलाने लगा

स्तुवन्त्येवं हि ऋषयस्तदा रावण आसुरः।

रामपत्नीं वनस्थां यः स्वनिवृत्त्यर्थमाददे ।। १७ ।।

स रावण इति ख्यातो यद्वा रावाच्च रावणः।

(रा= रामपत्नीं, वन= वनस्थाम्, रेफ के योग से 'न' का 'ण' होकर रावण वना) अथवा गम्भीर गर्जन करने के कारण वह रावण कहलाया। (राव= गम्भीर गर्जन)।

उसी रावण के अन्वेषण के वहाने सीता को ढूँढने के लिए श्रीराम और लक्ष्मण पृथ्वी पर घूमने लगे। देवी सीता को कष्ट में फँसी हुई सोच कर उन्होंने कवन्ध नामक राक्षस को मारा। इसके वे कवन्ध की आज्ञा से शवरी के पास पहुँचे। इसके बाद वायुपुत्र भक्त श्री हनुमान् द्वारा पूजित होकर कपिराज सुग्रीव को बुलाकर उन्हें अपनी पूरी बातें बतायीं। सुग्रीव को जब राम की शक्ति पर विश्वास नहीं हुआ। तब उसने विश्वास जमाने के लिए दुन्दुभि नामक राक्षस का कंकाल उन्हें दिखाया। जिसे श्रीराम

ने दूर फेंक डाला। साथ ही वे झट पट सात सँखुआ के पेड़ों को काटकर प्रसन्नचित्त हो गये। इसके बाद श्रीराम सुग्रीव के राज्य किष्किन्धा गये। जहाँ सुग्रीव ने जोरों से वाली के समीप जा कर गर्जना की। इस पर वाली अपने घर से बाहर आया जहाँ श्रीराम ने वाली को युद्ध में मारकर सुग्रीव को राजगद्दी पर बैठाया। इसके बाद सुग्रीव ने वानरों को बुलाकर कहा कि— तुम लोग तो सभी दिशाओं के वारे में जानते हो (आशाकोविदः) इसलिए जल्दी जाओ और श्रीसीता को लाकर आज ही मुझे दो। इसके बाद श्रीहनुमान् समुद्र तैर कर लंका पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रीसीता को देखा, तथा राक्षसों को मारकर लंका नगरी को जलाकर स्वयं लौट कर श्रीराम को सारी बातें कह डाली। तब श्रीराम क्रुद्ध होकर वानरों को बुलाकर उनके साथ अस्त्र-शस्त्र लेकर लंकापुरी पहुँचे। वहाँ सीता को देखकर लंका के राजा रावण के साथ उन्होंने युद्ध किया। रावण के साथ सेना में घटश्रोत्र (कुम्भकर्ण) तथा सहस्राक्षजित् (मेघनाद) भी थे। इस युद्ध में रावण को मारकर उन्होंने विभीषण को वहाँ राज्यसिंहासन पर स्थापित किया। तब वे जनक की पुत्री श्रीसीता को गोद में बैठाकर उन वानर सेनाओं के साथ अपनी नगरी अयोध्या लौट आए। इसके बाद दो भुजाओं वाले, धनुधारी, प्रसन्नचित्त एवं सभी प्रकार के आभूषणों से भूषित श्रीराम सिंहासन पर आरूढ हुए।

रामायण की सम्पूर्ण कथा के बाद इस उपनिषद् में श्रीराम दरवार की रूपरेखा खींचते हुए एक यन्त्र का निरूपण किया गया है, जिस यन्त्र पर सभी देवों की पूजा का विधान किया गया है।

श्रीराम के दक्षिण भाग में ज्ञानमयी मुद्रा है तथा वाम भाग में अपने तेज को प्रकाशित करनेवाली उनकी शक्ति स्वरूपा श्रीसीता विराजमान हैं। इनके साथ परमेश्वर चैतन्यमय श्रीराम व्याख्यान में लीन हैं। इनके उत्तर में शत्रुघ्न, दक्षिण में भरत तथा आगे

में हनुमान् है जो तीनों त्रिकोण बनाते हैं।

भरत के नीचे सुग्रीव तथा शत्रुघ्न के नीचे विभीषण अवस्थित हैं। पश्चिम भाग में लक्ष्मण छत्र एवं चामर (चँवर) लिए हुए हैं। इन सबके नीचे ताड़ का पंखा लिए हुए दो पुरुष हैं इस प्रकार दूसरा त्रिभुज भी बन जाता है। इस तरह प्रथम षट्कोण में अपने विशाल अंगों से युक्त उपर्युक्त परिजन इसके दलों पर विराजमान रहेंगे। दूसरे अष्टदल पर वासुदेव के अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) अग्नि कोण से प्रारम्भ कर व्यवस्थित रहेंगे। इसके बाहर के अष्टदल पर हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अंगद, शत्रुघ्न एवं जाम्बवान् अपने अस्त्रों से सुसज्जित रहेंगे। इसके बाहर धृष्टि, जयन्त, विजय सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अशोक, धर्मपाल एवं सुमन्त्र ये आठ द्वारपाल होंगे। इनके बाहरी भाग में दश दिक्पालों— इन्द्र, अग्नि, यमराज, नर्द्धति, वरुण, मरुत्, कुबेर, ईश, ब्रह्मा एवं अनन्त इनके स्थान हैं। जिनसे सब आवेष्टित हैं। इसके भी बाहरी भाग में नील, नल आदि सभी सेनापति अपने-अपने अस्त्रों के साथ अवस्थित है। इस प्रकार श्रीराम की यह सभा वसिष्ठ, वामदेव, आदि गुरुजनों के द्वारा पूजित है।

आगम शास्त्रीय पद्धति के अनुरूप इसके बाद द्वार पूजा कर भूतशोधन की क्रिया कर तब पद्मासन लगा कर प्रसन्नचित्त से श्रीराम की अर्चना के लिए यन्त्र के पीठ (मध्यभाग), ऊपर, नीचे तथा दोनों पार्श्व की पूजा कर मध्य कर्णिका की पूजा का विधान किया गया है तथा निर्देश दिया गया है कि कोमल एवं महीन वस्त्र से बनी तूल की शय्या पर रत्नासन पर श्रीराम तथा इनकी शक्ति की अर्चना करें। आसन के नीचे आधार रूप कूर्म, नाग, पृथ्वी एवं कमल की कल्पना कर पूजा करें। पीठपादों पर गणेश, दुर्गा, क्षेत्रपाल एवं सरस्वती की पूजा उनके बीजमन्त्र बिन्दु एवं धर्म (चतुर्थ्यन्त पदों) से संयुक्त कर पूर्व से प्रारम्भ कर चारों दिशाओं में क्रमशः करें।

बीच में क्रमशः सूर्य चन्द्र एवं अग्नि इनके तेजोमय मण्डल की पूजा तीनों के बीज मन्त्रों से तीन वृत्त के रूप में नीचे से ऊपर की ओर करें ये क्रमशः रजोमय सत्त्वमय एवं तमोमय मण्डल हैं जिनकी पूजा आदिम मानव भी किया करते थे। दिक्कोणों में आत्मा, अन्तरात्मा और बीच में परमात्मा तथा श्रीराम की ज्ञानात्मा की पूजा करें। चारों दिशाओं में माया, विद्या, कला एवं परमतत्त्व की पूजा करें। फिर विमला आदि आठ शक्तियों की पूजा कर देव श्री राम का आवाहन करें। ये श्रीराम अङ्गदेवों, सेना की पंक्तियों एवं श्री हनुमान् के भी पूज्य हैं। धृष्टि आदि द्वारपाल भी अपने-अपने अस्त्रों से सुसज्जित होकर इनकी आराधना करते हैं। वसिष्ठ आदि मुनिगण तथा नील आदि सेनापति के भी ये पूज्य हैं। ऐसे श्रीराम की आराधना चन्दन फूल आदि से तथा अनेक प्रकार की मुख्य उपहार की वस्तुओं से कर सम्यक् रूप से जप आदि भी करें। इस प्रकार इस जगत् के आधार श्रीराम जो सत् चित् एवं आनन्द इन तीनों के स्वरूप हैं; गदा खड्ग, शंख एवं कमल को धारण करते हैं; इस संसार की लीला जन्म, मृत्यु, जठरशयन आदि का निवारण करनेवाले हैं; उनकी वंदना हम सब करते हैं। उनका ध्यान करने से सब मोक्ष प्राप्त करते हैं। विश्वव्यापी श्रीराम जिस समय शंख चक्र गदा एवं कमल को धारण करते हुए लक्ष्मी स्वरूपा सीता, अनुज लक्ष्मण, अपना नगरी अयोध्या तथा अपने समस्त अनुचरों के साथ अन्तर्धान हुए उस समय वे सभी लोकों में व्याप्त हो गये। इनके भक्त जो हैं वे अपना समस्त कामनाओं को प्राप्त कर उनका भोग कर परम पद को प्राप्त करते हैं। सभी प्रकार के मनोरथ एवं सम्पत्तियाँ प्रदान करनेवाले इन मन्त्रों को जो पढते हैं वे पूर्ण शुद्ध होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

इस उपनिषद् के पूर्व भाग में इतना विवेचन किया गया है। यह स्मरणीय है कि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ

वैष्णवमताब्जभास्कर में श्रीराम की जो दार्शनिक व्याख्या की है तथा रामार्चन पद्धति में उपासना के लिए जिस कर्मकाण्ड का निर्देश किया है वह इस उपनिषद् के अत्यन्त निकट है। रामानन्दाचार्य ने भी अष्टदल कमल की योजना कर श्रीराम यन्त्र का निर्देश किया है।

रामोत्तरतापिन्युपनिषद् में मुख्यरूप से श्रीराम की उपासना के वीजमन्त्र की व्याख्या की गयी है तथा उसे तारक (उद्धार करनेवाला, पार लगानेवाला) कहा गया है। इसी प्रसंग में तारक की भी दार्शनिक व्याख्या है, जो अधिकांश परवर्ती उपनिषदों में समान रूप से पायी जाती है। आगम शास्त्र के अनुरूप साधक के शरीर में ही सभी तीर्थों का समावेश तथा उसके रहस्यों का उपदेश यहाँ किया गया है।

बृहस्पति ने याज्ञवल्क्य को उपदेश दिया था कि कुरुक्षेत्र के समीप का जो स्थल है वहाँ देवताओं ने दिव्य यज्ञ किया था अतः वह सभी प्राणियों के लिए ब्रह्म स्थल है इस प्रकार कुरुक्षेत्र अविमुक्त तीर्थस्थल है; वह देवताओं का दिव्य स्थल है; सभी प्राणियों का ब्रह्मस्थल है। इसलिए कहीं से कोई कहीं जाते हैं तो यही मानते हैं कि कुरुक्षेत्र देवताओं का दिव्य-यज्ञ स्थल है तथा प्राणियों का ब्रह्मस्थल है। यहाँ पर जब प्राणियों के प्राण छूटने लगे थे तब रुद्र ने अँकार स्वरूप तारक (उद्धारक) ब्रह्म की व्याख्या की थी जिससे वे अमर होकर मोक्ष के अधिकारी हुए। इसलिए इस अविमुक्त तीर्थ में निवास करना चाहिए। अविमुक्त को नहीं छोड़ना चाहिए। हे याज्ञवल्क्य यह ऐसा ही है।

इसके बाद भारद्वाज ने याज्ञवल्क्य से पूछा – ‘यह तारक क्या है? यह किसे पार लगाता है?’ याज्ञवल्क्य ने उपदेश दिया – तारक दीर्घमात्रा युक्त अग्निबीज (रा) है जिसमें विन्दु भी युक्त है इस प्रकार ‘रां’ यह बीज तारक है। उन्होंने फिर ‘माया’ का

उपदेश दिया जो ‘नमश्चन्द्राय, नमः भद्राय नमः’ है। यह ब्रह्मस्वरूपा तथा सच्चिदानन्दस्वरूपिणी है। इसकी उपासना करनी चाहिए। फिर तारक अँकार है जिसका प्रथम अक्षर ‘अ’ है। दूसरा अक्षर ‘उ’ है। तीसरा अक्षर ‘म’ है। चौथा अक्षर ‘अर्द्धमात्रा’ है (जो उच्चारण करने योग्य नहीं है – “अर्द्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः” – दुर्गासप्तशतीः प्रथम अध्याय) विन्दु पाँचवाँ अक्षर है तथा नाद छठा अक्षर है। यह अँकार पार कराता है अतः इसे तारक कहते हैं। इसी तारक को तुम ब्रह्म समझो। ‘इसी की उपासना करनी चाहिए’ – ऐसा जानो। यह गर्भ, जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु एवं संसार के अन्य बड़े-बड़े भयों से पार कराता है। इसलिए कहा गया है कि यह तारक छः अक्षरों का है। जो इस अँकार स्वरूप तारक ब्रह्म का नियमित रूप से जप करता है वह सभी पापों को पार कर जाता है। वह मृत्यु को पार करता है। वह ब्रह्म-हत्या को भी पार करता है। वह भ्रूण-हत्या जैसे निकृष्ट कर्म के पाप को भी पार करता है। वह वीरों की हत्या के पाप को पार करता है। वह सभी प्राणियों की हत्या के पाप को पार करता है। वह इस भव-सागर को पार करता है। वह सब कुछ पार कर जाता है। वह अविमुक्त तीर्थ (मोक्ष) की शरण में चला जाता है। वह महान् बन जाता है। वह अमर हो जाता है।

यहाँ ये श्लोक कहे गये हैं –

इस तारक (अँकार) के ‘अ’ अक्षर से उत्पन्न सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण विश्वस्वरूप है। ‘उ’ अक्षर से उत्पन्न शत्रुघ्न तेजःस्वरूप हैं। मकार से उत्पन्न भरत प्रज्ञावान् हैं। अर्द्धमात्रा रूप श्रीराम ब्रह्मानन्द के स्वरूप हैं। श्रीराम के समीप में रहने के कारण इस चराचर जगत् को आधार प्रदान करनेवाली तथा सभी प्राणियों की उत्पत्ति, अस्तित्व एवं संहार करनेवाली सीता मूल प्रकृति के नाम से जानी जाती है। ब्रह्मज्ञानी लोग प्रणव के कारण उसे प्रकृति कहते हैं।

अँकार कभी नष्ट न होनेवाला अक्षर परमात्मा

है। यह जो दृष्टिगोचर संसार है वह सब अकार के ही रूप का फैलाव है। जो बीत चुका है, जो हो रहा है और जो आगे होनेवाला है यो तीनों भूत वर्तमान एवं भविष्य सब अकार ही है। इसलिए यह सब कुछ ब्रह्म ही है। ये भगवान् श्रीराम भी ब्रह्म ही है। इस भगवान् श्रीराम के चार चरणों की कल्पना की गई है। जाग्रत अवस्था और उसमें दिखाई पड़नेवाला यह संसार ही जिनका शरीर है जो इस सारे संसार में रमे हुए हैं, जिनका ज्ञान इस सारे दृष्टिगोचर संसार में फैला हुआ है जो इस संसार को भली-भाँति जानते हैं, सात लोक (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः एवं सत्य) ही जिनके सात अंग हैं, शरीर के उन्नीस संस्तान (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राणवायु एवं चार अन्तःकरण) मानों जिनके मुख हैं, जो इस दृष्टिगोचर स्थूल संसार को अपने भीतर समाहित करते रहते हैं जो इस विश्वरूपी शरीर में रहनेवाले पुरुष होने के कारण वैश्वानर (अग्नि) कहलाते हैं वे पूर्ण परमात्मा श्रीराम के प्रथम चरण हैं। स्वप्न की अवस्था और उस अवस्था में दिखाई पड़नेवाला सूक्ष्म जगत् जिनका शरीर है, जिनका ज्ञान सूक्ष्म जगत् में ही फैला रहता है; जिनके उपर्युक्त सात अंग एवं उन्नीस मुख हैं, जो सूक्ष्म जगत् के सूक्ष्म तत्त्वों को अपने भीतर समाहित करते रहते हैं वे तेजोमय पुरुष उस पूर्ण ब्रह्म श्रीराम के द्वितीय पाद हैं। जिस अवस्था में सोते हुए मनुष्य की न तो कोई इच्छा ही होती है न ही वह कोई स्वप्न देखता है वह सुषुप्ति की अवस्था है। यह सुषुप्ति और सुषुप्ति की अवस्था में प्रलय ही जिनका शरीर है, जो एक ही रूप में हमेशा रहते हैं और समस्त एकत्रित विज्ञान ही जिनका स्वरूप है, जो आनन्दस्वरूप है, ज्ञानमय प्रकाश ही जिनका मुख है और जो एकमात्र आनन्द को अपने भीतर समाहित करते रहते हैं, जिन्हें छोड़कर और कोई नहीं है – वे प्राज्ञ पुरुष पूर्ण ब्रह्म श्रीराम के तृतीय चरण हैं।

इस प्रकार तीन चरणों में वर्णित परमात्मा

सब के ईश्वर हैं। वे सर्वज्ञ हैं, अन्तर्यामी हैं, सभी प्राणियों की उत्पत्ति के आधार हैं तथा वे ही सबों को अपने में समेट भी लेते हैं। जो न तो सूक्ष्म जगत् को जानता है न ही स्थूल दृष्टिगोचर संसार को जानता है, न दोनों को ही जानता है जिसे न तो जाननेवाला कहा जा सकता है न ही न जाननेवाला कहा जा सकता है, जो प्रज्ञान का भण्डार भी नहीं है, जो दिखाई नहीं पड़ता है, जो व्यवहार करने योग्य भी नहीं है, जिसे पकड़ा भी नहीं जा सकता है, जिसके पहचानने के लिए भी कोई संकेत नहीं है, जिसके बारे में न तो सोचा जा सकता है न ही कहा जा सकता है – अपने आत्मा की अनुभूति ही जिसका स्वरूप है जिसमें किसी प्रकार का कोई प्रसार नहीं है, जो शान्त है, शिव है एवं एक है वह पूर्णपुरुष श्रीराम का चतुर्थ चरण है। यही आत्मा है यही समस्त उपासकों का ज्ञेय है। वे सदा प्रकाशमान् हैं, अविद्या एवं उसके कारण होनेवाले कार्य से भी रहित हैं, अपने आत्मा के बन्धन को हरण करनेवाले हैं, हमेशा अद्वैत हैं, आनन्द स्वरूप हैं, सभी पदार्थों के आधार स्थान हैं, सत्त्वमय हैं, अविद्या (अज्ञान) तमः (अन्धकार) एवं मोह (शोक) इन तीनों को उन्होंने सर्वथा त्याग दिया है। 'केवल मैं ही हूँ' ऐसा जानते हुए मैं वह अकार हूँ, जो सत् है, जो परब्रह्म श्रीरामचन्द्र हैं वे चैतन्य स्वरूप हैं। यह अकार स्वरूप मैं हूँ वे श्रीराम परब्रह्मस्वरूप हैं। मैं ज्योतिःस्वरूप और रसात्मक हूँ, मैं अकारस्वरूप हूँ – यह अपने मन में दृढ कर मन के द्वारा ब्रह्म के साथ एकाकार हो जाएँ। 'मैं हमेशा श्रीराम हूँ' यह वास्तव में जो कहते हैं वे संसारी जीव नहीं रह जाते हैं; वे श्रीराम ही हो जाते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। यही उपनिषद् है। जो इस प्रकार जानते हैं वे इस संसार के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं – ऐसा याज्ञवल्क्य ने उपदेश दिया।

इसके बाद महामुनि अत्रि ने ऋषि याज्ञवल्क्य से पूछा – 'इस प्रकार के जो अनन्त, अव्यक्त, सभी

प्रकार से पूर्ण एवं एकमात्र आनन्दमय आत्मा है उसे मैं कैसे जान सकूँगा?’ इस पर याज्ञवल्क्य ने कहा। अविमुक्त तीर्थ (कुरुक्षेत्र) में निवास कर इनकी उपासना की जा सकती है। यह अनन्त एवं अव्यक्त आत्मा अविमुक्त तीर्थ में प्रतिष्ठित है। यह अविमुक्त तीर्थ किस में प्रतिष्ठित है? यह ‘वरणा’ और ‘नासी’ इन दोनों के बीच प्रतिष्ठित है। यह वरणा क्या है? यह नासी क्या है? पूर्व जन्मों में किए गये सभी पापों का यह निवारण करती है इसलिए इसे ‘वरणा’ कहते हैं और दस इन्द्रियों के द्वारा जो पाप किये गये हैं उनका निवारण करनेवाली नासी है। इस का स्थान क्या है? दोनों भीह एवं नाक का जो सन्धि-स्थल है वही स्वर्गलोक और परलोक का सन्धि स्थल है। इसी सन्धिस्थल की उपासना ब्रह्मज्ञानी सन्ध्यावन्दन से करते हैं। वहीं अविमुक्त स्थल पूज्य है। जो इस उपास्य अविमुक्त को जानता है वह स्वयं भी अविमुक्त ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

इसके बाद फिर उन्होंने कहा – ‘भगवान् शंकर ने श्रीराम के मन्त्र का जप एक हजार मन्वन्तर तक जप, होम, पूजा आदि के साथ काशी में किया। इस पर प्रसन्न हो कर श्रीराम ने शंकर से कहा – ‘हे परमेश्वर, आप जो चाहते हैं वह माँगे मैं प्रदान करूँगा।’ इस पर सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीराम से भगवान् शंकर ने कहा – ‘मेरे क्षेत्र मणिकर्णी में गंगा में अथवा गंगा के तट पर जिस शरीरधारी प्राणी की मृत्यु हो उसे मोक्ष मिले यहीं मैं चाहता हूँ। इससे अन्य कोई भी वर मुझे नहीं चाहिए। इस पर श्रीराम ने कहा – ‘हे देवाधिदेव शंकर, आपके क्षेत्र में जहाँ कहीं भी कीड़े-मकोड़े तक मरेगें वे शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करेंगे। मेरा यह वचन अन्यथा नहीं होगा। आय के अविमुक्त क्षेत्र में सबों की मुक्ति के लिए मैं पत्थर आदि की मूर्तियों में निवास करूँगा। हे शिव, इस क्षेत्र में जो इस मन्त्र से भक्ति पूर्वक मेरी अर्चना करेंगे उन्हें ब्रह्महत्या आदि पापों से मैं मुक्त कर दूँगा इसके लिए

आप शोक न करें। आपके उपदेश से अथवा ब्रह्मा के उपदेश से जो छः अक्षरोंवाले इस मन्त्र (ॐ रां रामाय नमः) को ग्रहण करते हैं वे अपने जीवन काल में मन्त्र सिद्धि प्राप्त कर मुक्त होकर मुझे पा लेते हैं। हे शिव मृत्यु समीप होने पर जिस किसी भी व्यक्ति के दाहिने कान में मेरे इस मन्त्र का उपदेश दिया जाए अथवा वह स्वयं इसका उच्चारण करे वह मोक्ष प्राप्त करता है – ऐसा श्रीरामचन्द्र ने कहा।’

इसके बाद भारद्वाज ने याज्ञवल्क्य से पूछा – ‘किन मन्त्रों से स्तुति किए जाने पर श्रीराम प्रसन्न होते हैं तथा अपना स्वरूप दिखाते हैं? उन मन्त्रों की शिक्षा हमें दें। याज्ञवल्क्य ने कहा – बहुत प्राचीन काल में सत्यलोक में श्रीराम ने स्वयं ब्रह्मा को इसकी शिक्षा दी थी। बाद में ब्रह्मा इन स्तुतियों से श्रीराम को प्रणाम करते हैं –

स्वप्रकाशः परंज्योतिः स्वानुभूत्यैकचिन्मयः।

तदेव रामचन्द्रस्य मनो राघक्षरः स्मृतः।।१।।

अखण्डैकरसानन्दस्तारकब्रह्मवाचकः।

रामायेति सुविज्ञेयः सत्यानन्दचिदात्मकः।।२।।

नमः पदं सुविज्ञेयं पूर्णानन्दैककारणम्।

सदा नमन्ति हृदये सर्वे देवा मुमुक्षवः।।३।।

अर्थात् समस्त विश्व का स्वरूप धारण करनेवाले जो नारायण हैं, जो भी प्रकार के दोषों से रहित हैं, पूर्ण आनन्द स्वरूप तथा एक मात्र विज्ञानमय हैं पर ब्रह्मस्वरूप हैं। ऐसे भगवान् विष्णु का मन ही मन स्मरण करते हुए ब्रह्मा ने उन्हें प्रसन्न किया। श्रीराम के उस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है – ‘ये जो श्रीरामचन्द्र हैं, जो भगवान्, अद्वैत एवं परमानन्द स्वरूप आत्मा है, जो परब्रह्म हैं, भूलोक, अन्तरिक्ष लोक एवं स्वर्ग लोक – इन तीनों लोकों के स्वरूप हैं उन्हें हम प्रणाम करते हैं।’

इसके बाद उपनिषद् के इस स्थल पर श्रीराम के विशेषणों के माध्यम से उनके कुल ४७ विशेषणों के द्वारा वैशिष्ट्यों का विशद वर्णन किया गया है।

जो श्री राम हैं।।१।। जो पूर्ण रस से ओतप्रोत हैं।।२।। जो ब्रह्मानन्दरूपी अमृत के स्वरूप हैं।।३।। जो ॐकार स्वरूप ब्रह्मा हैं।।४।। जो ब्रह्मा, विष्णु और महादेव ये तीनों हैं साथ ही सभी देवताओं में देवत्व अंश हैं।।५।। इतिहास, पुराण, विभिन्न शाखाओं तथा छः वेदाङ्गों के साथ चारों वेद भी इन्हीं के स्वरूप हैं।।६।। समस्त जीवों की अन्तरात्मा भी ये हैं।।७।। जो सभी प्राणियों की अन्तरात्मा है।।८।। जितने देव, राक्षस, मनुष्य आदि की चेष्टाएँ हैं।।९।। जितने मत्स्य, कच्छप आदि दश अवतार हैं।।१०।। चार प्रकार के अन्तःकरण से युक्त जो आत्मा है।।११।। पाँच वायु में से एक जो प्राणवायु है।।१२।। जो योग के आठ अंगों में से प्रथम 'नियम' है।।१३।। जो प्राणियों का संहार करनेवाला यमराज है।।१४।। जो मृत्यु है।।१५।। जो अमृत है।।१६।। जितने भी पाँच महाभूत-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश हैं।।१७।। जो स्थावर एवं जंगमों में स्थित आत्मा है।।१८।। ये जो पाँच अग्नियाँ हैं।।१९।। ये जो सात महाव्याकृतियाँ (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः एवं सत्यम्) हैं।।२०।। जो विद्या है।।२१।। जो सरस्वती है।।२२।। जो लक्ष्मी है।।२३।। जो गौरी है।।२४।। जो जानकी सीता है।।२५।। जो तीनों लोकों में स्थित है।।२६।। जो सूर्य है।।२७।। जो चन्द्र है।।२८।। ये जितने भी तारे हैं अथवा ज्योतिष शास्त्र में प्रसिद्ध अश्विनी, भरणी आदि २७ नक्षत्र हैं।।२९।। जो भी नवग्रह (सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु) है।।३०।। ये जो आठ लोकपाल (इन्द्र, अग्नि, यमराज, निर्वृति, वरुण, मरुत्, कुबेर एवं महादेव) हैं।।३१।। ये जो आठ वसु (धर, ध्रुव,

सोम, अह (विष्णु), अनिल, अनल, प्रत्यूष एवं प्रभास) हैं।।३२।। ये जो ग्यारह रुद्र (अज, एकपात्, अहिब्रह्म, पिनाकी, अपराजित, त्र्यम्बक, महेश्वर, वृषाकपि, शम्भु हरण एवं ईश्वर) हैं।।३३।। ये जो बारह आदित्य (अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, भारत, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंश, भग एवं अतितेजा) हैं।।३४।। जो कुछ पहले हो चुका है, जो हो रहा है और जो आगे होनेवाला है।।३५।। जो इस ब्रह्माण्ड के चारों ओर मण्डल रूप परिधि के भी बाहर है।।३६।। जो हिरण्यगर्भ शालिग्राम रूप विष्णु है।।३७।। यह जो सत्त्व रजः एवं तमोगुणवाली प्रकृति है।।३८।। यह जो त्रिगुणातीत ॐकार है।।३९।। ये जो चार प्रकार की अर्द्धमात्राएँ हैं।।४०।। ये जो परम पुरुष हैं।।४१।। जो महेश्वर हैं।।४२।। जो महादेव हैं।।४३।। जो ॐ नमो भगवते वासुदेवाय इस द्वादशाक्षर मन्त्र से अभिन्न विष्णु हैं।।४४।। जो महाविष्णु हैं।।४५।। जो परमात्मा हैं।।४६।। जो विज्ञान-स्वरूप हैं।।४७।। ये जो श्रीरामचन्द्र हैं, जो भगवान्, अद्वैत एवं परमानन्द-स्वरूप आत्मा हैं, जो सत्य, चैतन्य एवं आनन्द के स्वरूप, नित्यरूप से जो एक ही हैं जो कभी दो नहीं होते हैं तथा चैतन्य स्वरूप हैं भूलोक, अन्तरिक्ष लोक एवं स्वर्गलोक – इन तीनों लोकों के स्वरूप हैं उन्हें हम प्रणाम करते हैं।

इस प्रकार रामतापिन्युपनिषद् में श्रीराम की उपासना के विविध आयामों का विशद विवेचन किया गया है।

S

व्रत-परिचय

शारद नवरात्रारम्भ ४ अक्टूबर

दुर्गासप्तशती के अनुसार असुरों के संहार के लिए सभी देवों ने एकत्रित होकर अपनी अपनी शक्तियाँ एकत्रित कर एक नारी-स्वरूप को उत्पन्न किया। इस नारीस्वरूप का मुख शिव के तेज से, यम के तेज के केश, विष्णु के तेज से बाहें और ब्रह्मा के तेज से उनके दोनों पैर निर्मित हुए। इसी प्रकार अन्य देवों के तेज से अन्य अंग-प्रत्यंगों का निर्माण हुआ। दुर्गासप्तशती के द्वितीय अध्याय में इस निर्माण का स्पष्ट वर्णन किया गया है। सभी देवताओं ने उन्हें अस्त्र-शस्त्रों से समृद्ध किया। इस प्रकार सभी देवों की समन्वित शक्ति देवी दुर्गा की वार्षिक महापूजा शारद नवरात्र में करने का विधान दुर्गासप्तशती में किया गया है – शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी (अध्याय १२)।

इस नवरात्र का आरम्भ आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को होता है। विद्यापति कृत दुर्गाभक्तितरङ्गिणी के अनुसार इस दिन पूर्वाह्न में ही निषिद्ध काल को त्याग कर कलशस्थापन होनी चाहिए। कलश के आधार पर षट्दल कमल का निर्माण कर पवित्र स्थान की मृत्तिका की वेदी बनाकर उस पर यव डाल कर शास्त्रानुसार स्थापना करनी चाहिए।

पत्रिका-प्रवेश १० अक्टूबर

पत्रिका-प्रवेश की पूर्व-सन्ध्या में विल्व-वृक्ष के नीचे वृक्षपूजन के साथ-साथ विल्व-युगल की पूजा होती है। उसे लाल वस्त्र से बाँधकर छोड़ दिया जाता है। यह विल्वाभिमन्त्रण की विधि कहलाती है। प्रातःकाल मण्डप में इसका प्रवेश कराया जाता है।

इसी दिन प्रातःकाल देवी को दिव्य-चक्षु प्रदान कर प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा की जाती है। इसके साथ दर्शनार्थियों के लिए पट खुल जाता है।

महाष्टमी एवं महानवमी ११ अक्टूबर

इस दिन प्रातःकाल ६:१७ मिनट तक अष्टमी है। देवी पूजन में नवमी विद्धा अष्टमी तथा अष्टमी विद्धा नवमी प्रशस्त तिथि मानी गयी है; अतः इसी दिन महाष्टमी एवं महानवमी की पूजा होगी। महाष्टमी की निशा-पूजा पूर्वरात्रि में ही हो जायेगी।

विजयादशमी १२ अक्टूबर

इस दिन प्रातःकाल में देवी-प्रतिमा का विसर्जन तथा जयन्ती-धारण किया जाता है। परम्परानुसार लोग श्रेष्ठ व्यक्तियों के घर जाकर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करते हैं। इस दिन तीर्थ-यात्रा पर निकलने की भी

परम्परा है।

शरत् पूर्णिमा / कोजागरा १७ अक्टूबर, चन्द्र-ग्रहण

आश्विनी पूर्णिमा का चन्द्रोदय जिस दिन होता है, उस दिन लक्ष्मी की पूजा की जाती है तथा-मिथिला में नव-विवाहित दम्पति की मंगल कामना के लिए उनके ऊपर दूर्वाक्षत छिड़का जाता है।

दीपावली १ अक्टूबर

भ्रातृ-द्वितीया, यम द्वितीया, चित्रगुप्त-पूजा

भगवान् सूर्य के पुत्र यम एवं पुत्री यमुना सेसम्बद्ध यह दिन माना गया है। लोकव्यवहार में इस दिन भाई अपनी बहन के घर जाकर भोजन करते हैं। कहा जाता है कि इस दिन जो बहन अपने भाई को भोजन कराती है उनका सौभाग्य अटल रहता है, साथ ही भाई की भी आयु बढ़ती है।

इस पर्व का के माहात्म्य का वर्णन पद्म-पुराण के उत्तर खण्ड के १२२ वें अध्याय में श्लोक सं०६२ से १०३ तक विस्तार से किया गया है। इसके अनुसार प्राचीन काल में यमराज ने इस दिन अपनी बहन यमुना द्वारा पूजित होकर उनके के हाथों भोजन किया था।

कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां तु शौनक।

यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेर्चितः।।

अतः यमराज की कृपा से पापमुक्त होकर स्वर्ग जाने के लिए इस दिन यमुना के जल में स्नान का भी विशेष महत्त्व माना गया है। इस दिन बहन के घर भोजन करना चाहिए तथा उसे पारितोषिक देकर प्रसन्न करना चाहिए। बहन भी भाई की अभ्यर्थना करे।

इस प्रकरण में यमराज की एक स्तुति भी की गयी है –

महिषासनमारूढो दण्डमुद्गरभृत् प्रभुः।

वेष्टितः किंकरैर्हृष्टैः तस्मै याम्यात्मने नमः।।

प्रकरण के अन्त में कहा गया –

यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः संभोजितः प्रतितिथौ स्वसूसौहृदेन।

तस्मात् स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति प्राप्नोति वित्तशुभसंपदमुत्तमांसः।।

इसी दिन यमराज के मन्त्री चित्रगुप्त की पूजा का भी विधान किया गया है। परम्परानुसार भगवान् चित्रगुप्त सभी व्यक्तियों के पाप-पुण्य का लेखा-जोखा रखते हैं। उनका आसन यम के दरवार में लगा रहता है। यह अवधारणा कम से कम छठी शती से पहले ही स्थापित हो चुकी थी क्योंकि महाकवि दण्डी के दशकुमारचरित में इसका उल्लेख उपलब्ध होता है।

चित्रगुप्त महाराज लेखन-कला के देवता माने जाते हैं। प्राचीन काल में कायस्थ जाति इस कला के इष्ट प्रसिद्ध थे। विशाखदत्त के मुद्राराक्षस नाटक में चाणक्य की एक उक्ति है जिसमें कहा गया है कि ब्राह्मण यदि यत्नपूर्वक भी लिखे फिर भी अक्षर सुन्दर नहीं होते; अतः यह लेख शकटदास से लिखा लाओ। वाद में

भी लिपिकार के रूप में कायस्थ समाज में पूर्ण प्रतिष्ठित रहे। वे चित्रगुप्त की पूजा इस दिन धूम-धाम से करते हैं।

मिथिला की परम्परा में वर्षकृत्यकारों ने चित्रगुप्त-पूजा की पद्धति के साथ एक कथा दी है, जिसे पद्मपुराण से उद्धृत माना गया है; किन्तु मुम्बई संस्करण के उपलब्ध पद्म-पुराण की प्रति में यह कथा उपलब्ध नहीं है। हालाँकि कई स्थानों पर चित्रगुप्त की महिमा तथा उनकी स्तुतियाँ उपलब्ध हैं। परम्परा से प्राप्त व्रत-कथा के अनुसार चित्रगुप्त का जन्म ब्रह्मा के शरीर से हुआ और ब्रह्मा ने उन्हें धर्म एवं अधर्म की विवेचना के लिए यमपुरी में वास करने का आदेश दिया।

चित्रगुप्त के ध्यान में कहा गया है कि उनके हाथों में दवात, कलम और छुरी है। इस कथा में प्रणाम करने का मन्त्र इस प्रकार है—

मसीभाजनसंयुक्तश्चरोसि त्वं महीतले ।
लेखनीकटिनीहस्त चित्रगुप्त नमोऽस्तु ते ।।
येषां त्वया लेखनस्य जीविका येन निर्मिता ।
तेषां च पालको यस्मात् ततः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।

श्रीसूर्यषष्ठी, छठ सायंकालिक अर्घ्य ७ अक्टूबर

श्रीसूर्यषष्ठी प्रातःकालीन अर्घ्य, पारणा ८ अक्टूबर

कार्तिक शुक्ल षष्ठी एवं सप्तमी तिथि को पारम्परिक रूप से विवस्वत् षष्ठी का पर्व मनाया जाता है। इस में प्रधान रूप से संज्ञा सहित सूर्य की पूजा है। पौराणिक परम्परा में संज्ञा को सूर्य की पत्नी कहा गया है। इस पर्व की परम्परा कम से कम ६०० वर्ष प्राचीन है क्योंकि मिथिला के धर्मशास्त्री रुद्रधर इस व्रत का उल्लेख एवं विधान करते हैं। रुद्रधर के अनुसार इस पर्व की कथा स्कन्दपुराण से ली गयी है। इस कथा में दुःख एवं रोग नाश के लिए सूर्य का व्रत करने का उल्लेख किया गया है—

भास्करस्य व्रतं त्वेकं यूयं कुरुत सत्तमाः ।

सर्वेषां दुःखनाशो हि भवेत्तस्य प्रसादतः ।।२४।।

आगे इस व्रत का विधान बतलाते हुए कहा गया है कि पंचमी तिथि को एकवार ही भोजन कर संयमपूर्वक दुष्ट वचन, क्रोध, आदि का त्याग करें। अगले जिन षष्ठी तिथि को निराहार रहकर सन्ध्या में नदी के तट पर जाकर धूप, दीप, घी में पकाये हुए पकवान आदि से भगवान् भास्कर की आराधना कर उन्हें अर्घ्य दें। यहाँ अर्घ्य-मन्त्र इस प्रकार कहे गये हैं—

नमोऽस्तु सूर्याय सहस्रभानवे नमोऽस्तु वैश्वानर जातवेदसे ।

त्वमेव चार्घ्यं प्रतिगृह्ण गृह्ण देवाधिदेवाय नमो नमस्ते ।।

नमो भगवते तुभ्यं नमस्ते जातवेदसे ।

दत्तमर्घ्यं मया भानो त्वं गृहाण नमोऽस्तु ते । ।
 एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।
 अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर । ।
 एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।
 गृहाणार्घ्यं मया दत्तं संज्ञयासहित प्रभो । ।

यहाँ रात्रि में जागरण कर पुनः प्रातःकाल सूर्य की आराधना कर अर्घ्य देने का विधान किया गया है ।

वर्तमान में खेमराज बेंकटेश्वर स्टीम् मुम्बई द्वारा प्रथम प्रकाशित तथा नाग प्रकाशन दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित स्कन्दपुराण में यह कथा उपलब्ध नहीं है। इस विषय में ध्यातव्य है कि उत्तर भारत की परम्परा में प्रचलित कथाओं का उत्स पुराणों में खोजने के लिए हमें पुराणों के उत्तर भारतीय संस्करण देखना चाहिए न कि मुम्बई संस्करण ।

इसकी दूसरी कथा भविष्योत्तर-पुराण से संकलित कही गयी है, जिसके अनुसार जब पाण्डवगण द्यूत में हारकर वनवास-काल व्यतीत कर रहे थे तब वे भाइयों के भरण-पोषण के लिए चिन्तित थे। इसी बीच अस्सी हजार मुनि उनके आश्रम में पधारे। उनके भोजन की चिन्ता में युधिष्ठिर अधिक घबड़ा उठे। तब द्रौपदी ने अपने पुरोहित धौम्य ऋषि से इसका समाधान पूछने लगी। धौम्य ऋषि ने उन्हें भगवान् सूर्य का व्रत रवि-षष्ठी करने का निर्देश दिया जिसे प्राचीन काल में भी नागकन्या के उपदेश से सुकन्या ने किया था।

आगे बतलाते हुए धौम्य ऋषि ने कहा कि प्राचीन काल में शर्याति नामक एक राजा हुए उनकी पुत्री सुकन्या थी। एकवार राजा अपनी रानियों के साथ जंगल में शिकार खेलने के लिए गये थे। बालस्वभाव वश सुकन्या वन में अकेले घूमने निकल पड़ी। उस वन में च्यवन मुनि घोर तपस्या कर रहे थे। उनके चारों ओर दीमक का टील वन गया था किन्तु उसके एक विवर से मुनि की आँखें चमकती दिखाई पड़ रही थीं। सुकन्या बालसुलभ चपलता के कारण उनकी आँखों में काँटा चुभो दिया। मुनि की आँखों से रक्त की धारा वह चली। सुकन्या भी फूल चुनकर शिविर में लौट आयी। इस घटना के बाद राजा शर्याति और उनके सैनिक अस्वस्थ हो गये; उनके मल-मुत्र अवरुद्ध हो गये। तब राजा के पुरोहित ने रहस्य जानकर राजा को सारी बातें बतलायीं। पुरोहित ने उन्हें बतलाया कि आप अपनी कन्या उन्हें देकर उन्हें प्रसन्न करें। राजा ने वैसा ही किया। सुकन्या अन्धे मुनि च्यवन को ब्याही गयी। सुकन्या को वन में छोड़कर शर्याति नगर लौट आये ।

एक दिन कार्तिक मास में सुकन्या जल लेने नदी के तट पर गयी। वहाँ उन्होंने नागकन्याओं को एक व्रत करते देखा। सुकन्या के पूछने पर नागकन्याओं ने कहा—

कार्तिकस्य सिते पक्षे षष्ठी वै सप्तमीयुता ।
 तत्र व्रतं प्रकुर्वीत सर्वकामार्थ सिद्धये । ।
 पचम्यां नियमे कृत्वा व्रतं कृत्वा विधानतः ।

एकाहारं हविष्यस्य भूमौ शय्यां प्रकल्पयेत् ।।५१।।
 षष्ठ्यामुपोषणं कुर्याद्रात्रौ जागरणं चरेत् ।
 मण्डपञ्च चतुर्वर्णं पूजयेद्दिननायकम् ।।५२।।
 नाना फलैः सनैवेद्यैः पक्वान्नाद्यैः प्रपूजयेत् ।
 उत्सवं गीतवाद्यादि कर्तव्यं सूर्यप्रीतये ।।५३।।
 तावदुपोषणं कुर्याद्यावत्सूर्यस्य दर्शनम् ।
 सप्तम्यामुदितं सूर्यं दद्यादर्घ्यं विधानतः ।।५४।।
 सदुग्धैर्नारिकेलैस्तु सपुष्पफलचन्दनैः ।

इसके बाद अर्घ्यमन्त्र इस प्रकार हैं -

नमोऽस्तु सूर्याय सहस्रभानवे नमोऽस्तु वैश्वानर जातवेदसे ।
 त्वमेव चार्घ्यं प्रतिगृह्ण गृह्ण देवाधिदेवाय नमो नमस्ते ।।
 नमो भगवते तुभ्यं नमस्ते जातवेदसे ।
 दत्तमर्घ्यं मया भानो त्वं गृहाण नमोऽस्तु ते ।।
 एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।
 अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर ।।

यहाँ एक उत्कृष्ट प्रार्थनामन्त्र भी उल्लिखित है -

ॐ नमः सवित्रे जगदेक चक्षुषेजगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
 त्रयीमयायत्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशंकरात्मने ।।

सुकन्या इन्हीं नागकन्याओं के उपदेश पर यह व्रत करने लगी, जिससे उसके पति च्यवन मुनि की आँखें नीरोग हो गयीं। इस पूर्वकथा को द्रौपदी से सुनाते हुए धौम्य ने द्रौपदी को भी यह व्रत करने का उपदेश किया, जिससे वह भी प्रसन्नतापूर्वक रहने लगी।”

महाभारत में भगवान् सूर्य द्वारा द्रौपदी को अक्षय-पात्र देने का जो आख्यान है, उसीसे इस कथा को जोड़ा गया है।

बिहार की लोक परम्परा में सूर्य षष्ठी में छठी मैया की पूजा से सम्बद्ध अनेक गीत तथा लोक कथाएँ प्रचलित हैं। इस परम्परा का सम्बन्ध भविष्य पुराण की एक कथा से है, जिसमें कार्तिक मास की षष्ठी तिथि को कार्तिकेय तथा उनकी माता की पूजा का विधान किया गया है। भविष्य-पुराण के उत्तर पर्व के ४२ वें अध्याय में कहा गया है कि कार्तिकेय ने इस दिन तारकासुर का वध किया था। इसलिए यह तिथि कार्तिकेय की दयिता कही जाती है। इस अध्याय के प्रारम्भ में मार्गशीर्ष अर्थात् अग्रहण मास का नाम है -

येयं मार्गशिरे मासि षष्ठी भरतसत्तम ।

पुष्या पापहरा धन्याशिवाशान्ता गुहप्रिया ।

निर्हय तारकं षष्ठ्यां गुहस्तारकराजवत् ।

राज तेन दयिता कार्तिकेशस्य सा तिथिः

यहाँ उल्लिखित मार्गशिर को अमान्त मासारम्भ की गणना के अनुसार समझना चाहिए, क्योंकि इसी अध्याय में कार्तिक मास का भी उल्लेख है।

एवं संवत्सरस्यान्ते कार्तिके मासि शोभने ।

कार्तिकेयं समभ्यर्च्य वासोभिर्भूषणैः सह । ।

इस अध्याय में इस षष्ठी तिथि को सूर्य की पूजा करने का भी विधान किया गया है। सथ ही एक अन्य कथा के अनुसार शिव की शक्ति से उत्पन्न कार्तिकेय को छह कृतिकाओं ने दूझ पिलाकर पाला था। अतः कार्तिकेय की छह मातायें मानी जाती हैं और उन्हें षाण्मातृ भी कहा जाता है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि कृतिका नक्षत्र छह ताराओं का समूह भी है तथा स्कन्द-षष्ठी नाम से एक व्रत का उल्लेख भी है। वद्ये के जन्म के छठे दिन स्कन्दमाता षष्ठी की पूजा भी प्राचीन काल से होती आयी है। अतः सूर्य-पूजा तथा स्कन्दमाता की पूजा की पृथक् परम्परा एक साथ जुड़कर सूर्यपूजा में स्कन्दषष्ठी समाहित हो गयी है; किन्तु लोक संस्कृति में छठी मैया की अवधारणा सुरक्षित है।

अक्षयनवमी १० नवम्बर

कार्तिक शुक्ल नवमी तिथि को युगादि माना गया गया है। इस दिन नदीस्नान एवं विष्णु की पूजा का मुख्य रूप से विधान है। पद्म-पुराण के अनुसार इस दिन तुलसी के साथ भगवान् विष्णु के विवाह का उत्सव एवं उस रूप में विष्णु की पूजा करनी चाहिए—

कार्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः ।

हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं विभुम् । ।

पूजयेद् विधिवद् भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम् ।

एवं यथोक्त विधिना कुर्याद् वैवाहिकं विधिम् ।

देवोत्थान एकादशी / प्रबोधिनी एकादशी १२ नवम्बर

आषाढ शुक्ल एकादशी को हरिशयन एकादशी, भाद्र शुक्ल एकादशी को पार्श्व परिवर्तनी एकादशी तथा कार्तिक शुक्ल एकादशी को प्रबोधिनी अथवा देवोत्थान एकादशी का व्रत मनाया जाता है। इस दिन लक्ष के साथ भगवान् विष्णु की पूजा कर उस पीढे को व्रतीगण चार वार उठाते हैं तथा चारों वार निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हैं—

ब्रह्मेन्द्ररुद्रैरभिवन्द्यमानो भवानृषिर्वन्दितवन्दनीयः ।

प्राप्ता तवेयं किल कौमुदाख्या जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ । ।

मेधा गता निर्मलपूर्णचन्द्रशारद्यपुष्पाणि मनोहराणि ।

अहं ददानीति च पुण्यहेतोर्जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ । ।
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते ।
 त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितं भुवनत्रयम् । ।

भीष्मपंचक

कार्तिक शुक्ल एकादशी से पूर्णिमा तक के पाँच दिन भीष्म पंचक के नाम से ख्यात हैं। इस व्रत की विधि का उल्लेख करते हुए कमलाकर भट्ट निर्णय सिन्धु में कहते हैं कि गाय के गोबर मिले जल से स्नान कर पंचामृत और पंचगव्य से विष्णु को स्नान करा कर ॐ नमो भगवते श्री वासुदेवाय इस द्वादशाक्षर मन्त्र का १०८ बार जप कर ॐ नमो विष्णवे इस षडक्षर मन्त्र से यव तिल तण्डुल शर्करा एवं घृत (तिल का आधा तण्डुल, तण्डुल का आधा जौ, जौ का आधा शकर तथा सभी वस्तुओं की सम्मिलित मात्रा का आधा घृत) से १०८ बार जप करें। प्रतिदिन ये कर्म करें। प्रथम दिन कमल पूल से विष्णु के पैरों की पूजा कर तीन बार गाय का गोबर मिला जल चरणामृत के रूप में ॐ नमो विष्णवे इस षडक्षर मन्त्र से पान करें। दूसरे दिन विल्वपत्र से भगवान् के घुटनों की पूजा कर गोमूत्र का पान करें। तीसरे दिन भृङ्गराज के पत्र से भगवान् की नाभि की पूजा कर गाय का दूध पीयें। चौथे दिन करवीर के फूलों से भगवान् के स्कन्ध की पूजा कर दही खायें। पूर्णिमा के दिन लोहा से निर्मित पाप की प्रतिमा बनाकर उसे तिल की ढेर पर रख कर भर्भराज के नाम से करवीर पूल से उस पापदेव की पूजा करें—

यदन्यजन्मनिर्कृतमिह जन्मनि वा पुनः ।

तत्सर्वं प्रशमं यातु मत्पापं तव पूजनात् । ।

इस विशेष विधि के बाद कमलाकर भट्ट सामान्य विधि का उल्लेख करते हैं कि इन दिनों हविष्य भोजन करना चाहिए। वर्तमान काल के भोज्य पदार्थों में मांस, मछली, लहशुन, प्याज, मूली, गाजर, मसूर, उड़द, के साथ उत्तेजक एवं गन्ध युक्त पदार्थों का परित्याग कर सात्त्विक भोजन कर भगवान् विष्णु की उपासना करनी चाहिए।

कार्तिक पूर्णिमा १५ नवम्बर

कार्तिकी पूर्णिमा के दिन नदियों में प्रातःस्नान एवं भगवान् विष्णु की पूजा का विशेष महत्त्व कहा गया है। मिथिला की परम्परा इसकी सन्ध्या में 'सामा-पूजन' होता है, जिसकी कथा श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब तथा उनकी पुत्री साम्बा से जुड़ी हुई है। कहा जाता है कि एक बार कृष्ण ने किसी चुगला के कहने पर अपने पुत्र साम्ब को पक्षी हो जाने का शाप दे दिया। इस शाप से उन्हें मुक्त कराने के लिए वहन साम्बा भी पक्षी बनकर वृन्दावन में मुड़न की तरह तपस्या करने लगी। अपनी तपस्या के प्रभाव से उन्होंने साम्ब को शापमुक्त कराया। आज भी वहन अपने भाई के दीर्घ जीवन तथा उनके कल्याण के लिए मिट्टी से पशु-पक्षियों की आकृति बना कर साम्बा की पूजा करती हैं। यह पर्व भ्रातृद्वितीया की रात्रि से प्रारम्भ होकर कार्तिकी पूर्णिमा को समाप्त होता है।

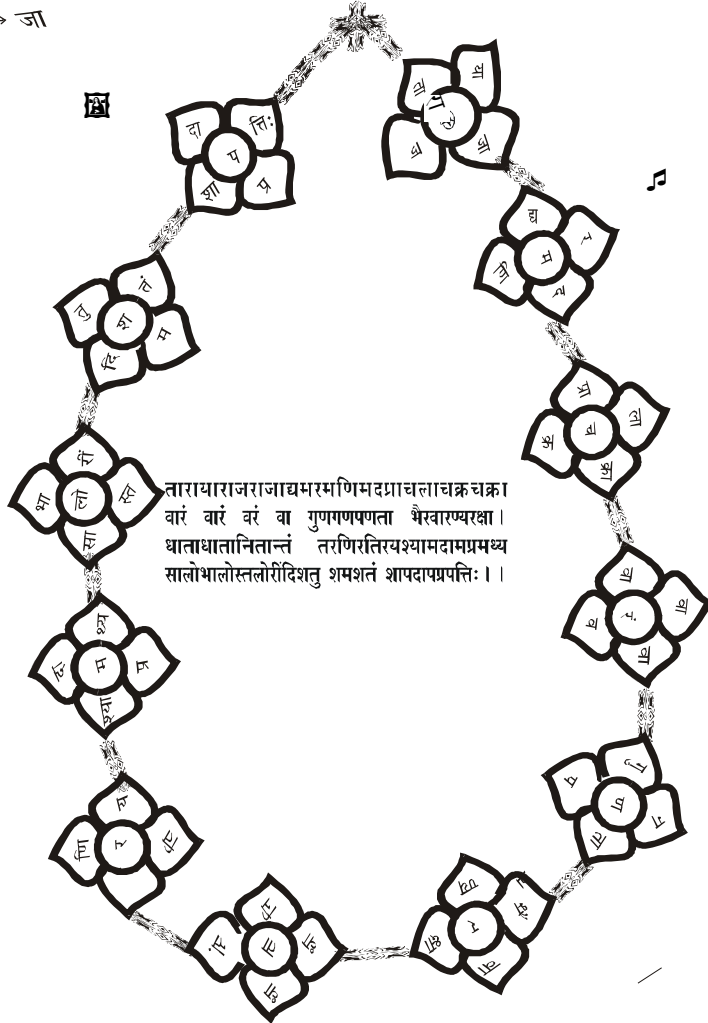
मालाबन्ध

प्राचीन काल में संस्कृत के कवियों ने संस्कृत अपनी प्रतिभा के बल पर अनेक चमत्कारपूर्ण काव्यों की रचना की है। जहाँ एक ओर इन्होंने ध्वनि, रस, अलंकार, गुण रीति आदि का समायोजन कर भाव के स्तर पर इत्कृष्ट काव्यों का प्रणयन किया है वहीं वर्णों के विशिष्ट समायोजन से चमत्कारपूर्ण चित्रकाव्यों की रचना में पीछे नहीं रहे हैं। इन चित्रकाव्यों को शास्त्रीय रीति से लिखने पर किसी वस्तु की आकृति बन जाती है। पद्मबन्ध, खड्गबन्ध, मुरजबन्ध आदि ऐसे चित्रकाव्य हैं, जिनका प्रतिपादन संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में मिलते हैं। महाकवि माघ एवं भारवि ने भी क्रमशः शिशुपालवध एवं किरातार्जुनीय महाकाव्यों में इन चित्रकाव्यों का प्रयोग किया है। इन्हीं चित्रकाव्यों में से एक मालाबन्ध काव्य भी है। इसे हमने काव्यप्रकाश की एक प्राचीन पाण्डुलिपि से ली है।

प्रस्तुत चित्र वारह फूलों की एक माला का है ऊपर से दाहिनी ओर इसका प्रवाह है। प्रत्येक फूल में कर्णिका एवं चार दल हैं। पाँचों स्थान में पाँच अक्षर लिखे हुए हैं। यहाँ अक्षरों का प्रवाह इस प्रकार हो है -

ता रा या रा ज रा

या
↑ ↓
ता → रा → जा
↓ ↑
ज



पुराण में वृक्षारोपण की महिमा

भविष्य पुराण के उत्तरपर्व के १२८वें अध्याय में वृक्षारोपण की महिमा का विशद विवेचन हुआ है।

युधिष्ठिर उवाच । ।

वृक्षारोपणमाहात्म्यं वद देवकिनन्दन ।

इद्यापनविधिं चैव रहस्यं समासतः । । १ । ।

युधिष्ठिर बोले – हे कृष्ण मुझे वृक्षारोपण का माहात्म्य एवं इसके स्थापित करने की विधि गूढ़ रहस्यों के साथ संक्षेप में बतलायें।

श्रीकृष्ण उवाच । ।

श्रीकृष्ण ने कहा।

वरं भूमिरुहाः पञ्च नगकाष्ठरुहा दश ।

पत्रैः पुष्पैः फलैर्मूलैः कुर्वन्ति पितृतर्पणम् । । २ । ।

पाँच वृक्ष या पहाड़ पर उगनेवाली दश लताओं को लगना श्रेष्ठ है, क्योंकि ये वृक्ष अपने फल, फूल पत्ते और जड़ से अपने रक्षक या लगानेवाले पिता को तृप्त करते हैं।

बहुभिर्मृतकिंजातैः पुत्रैर्धर्मार्थवर्जितैः ।

वरमेकं पथितरुयत्र विश्रमते जनः । । ३ । ।

मरे हुए या कष्ट से जन्मे हुए धर्म और धन से वर्जित अनेक पुत्रों से तो अच्छा रास्ते के किनारे खड़ा एक वृक्ष है, जहाँ रुककर धकेले हुए पथिक विश्राम कर लेते हैं।

प्राणिनः प्रीणयन्ति स्म छायावत्कलपल्लवैः ।

घनच्छदाः सुतरवः पुष्पैर्देवान् फलैः पितृन् । । ४ । ।

सघन छाया वाले सुन्दर वृक्ष अपनी छाया, छिलका, और पत्तों से मनुष्य को प्रसन्न करते हैं; पूलों से देवताओं को तथा फलों से पितरों को प्रसन्नता देते हैं।

पुष्पपत्रफलच्छायामूलवत्कलदारुभिः ।

धन्या महीरुहा येषां विफला यान्ति नार्थिनः । । ५ । ।

अपने फूल, पत्ते, फल, छाया, जड़, छिलका और तना से सम्पन्न वृक्ष धन्य हैं, जिनके पास से कोई भी याचक खाली हाथ नहीं लौटता।

पुत्राः संवत्सरस्यान्ते श्राद्धं कुर्वन्ति वा न वा ।

प्रत्यहं पादपा पुष्टिं श्रेयोऽर्थं जनयन्ति हि । । ६ । ।

एक वर्ष वीतने के बाद वार्षिक एकोद्दिष्ट के रूप में पुत्र श्राद्ध करे या न भी करे; किन्तु लगाये गये वृक्ष प्रतिदिन पोषण, उन्नति एवं धन देते हैं।

न तत्करोत्यग्निहोत्रं सुखं यद्योषितः सुतः ।

यत्करोति घनच्छायः पादपः पथि रोषितः ॥७॥

अग्नि में हवन, पत्नी तथा पुत्र भी वैसा फल नहीं देता है जैसा कि रास्ते के किनारे लगाया गया वृक्ष ।

सच्छाया च सपुष्पा च सफला वृक्षवाटिका ।

कुलयोषेव भवति भर्तृलोकद्वयानुगा ॥८॥

सुन्दर छाया वाली, फूलों से भरा हुई तथा फलों से लदी हुई वाटिका किसी कुलीना स्त्री के समान पति के इहलोक तथा परलोक में साथ देती है ।

अशोकफलपुष्पाढ्या तिलकालंकृतानना ।

सर्वोपभोगवेश्येव वाटिका रमते सदा ॥९॥

वाटिका अशोक वृक्ष तथा फल-फूलों से लजी होती है तथा तिलक वृक्ष से शोभित रहती है । वेश्या भी शोक का नाश रूपी फल देनेवाली तथा हाथों में फूल लेकर लोगों का स्वागत करती है; ममस्तक पर तिलक लगाकर अपने मुख को सजाती है । इस प्रकार वाटिका वेश्या के समान सदा शोभित रहती है ।

सदा स तीर्थी भवति सदा दानं प्रयच्छति ।

सदा यज्ञं स यजते यो रोपयति पादपम् ॥१०॥

जो व्यक्ति वृक्ष लगाता है वह मानों सदा तीर्थ करता है; सदा दान करता है; सदा यज्ञ करता है ।

अश्वत्थमेकं पिचुमर्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश चिञ्चिणीकान् ।

कपित्थवित्त्वामलकीत्रयं च पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येत् ॥११॥

एक पीपल, एक नीम, बड़, दस इमली, कथा, वेल और आँवला के तीन तीन तथा आम के पाँच पेड़ लगाने वाले नरक का मुँह नहीं देखते ।

पुष्पोपगन्धाढ्यफलोपगन्धं यः पादपं स्पर्शयते द्विजाय ।

स स्त्रीसमृद्धं बहुरत्नपूर्णं लभेद्विमानप्रतिमं गृहं वै ॥१२॥

जो व्यक्ति फल और फूल से सुगन्धित वृक्ष ब्राह्मण को दान में देते हैं, वे स्त्री और अनेक प्रकार के रत्नों से विभूषित होकर तिमंजिली इमारत-जैसा घर पाते हैं ।

प्रतिश्रयाश्रान्तसमाश्रयत्वात् समीहितं तत्र फलं बुभुक्षोः ।

अपत्यमेकं परलोकहेतोर्विमृश्यतां किं तरवो न रोषिताः ॥१३॥

यह थके हुए पथिकों का आश्रय होता है तथाभूखे लोगों को यहाँ फल की प्राप्ति होती है । जो लोग परलोक साधने के लिए एक पुत्र की इच्छा करते हैं, वे वृक्ष क्यों नहीं लगा लेते!

न खानिताः पुष्करिण्यो रोषिताः न महीरुहाः ।

मातुर्यौवनचौरैण तेन जातेन किं कृतम् ॥१४॥

जिसने अपने जीवन में तालाब नहीं खुदवाया; वृक्ष नहीं लगाये इनके जन्म से क्या लाभ । इन्होंने तो केवल अपनी माँ के यौवन को ही चुराया ।

छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमातपे ।

फलन्ति च परार्थेषु न स्वार्थेषु महाद्रुमाः ॥१५॥

वृक्ष दूसरे को छाया देते हैं और स्वयं धूप में खड़े रहते हैं; अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए फल देते हैं ।

विद्यापति के भोलेनाथ

प० भवनाथ झा

उत्तर बिहार के जनकण्ठ से निकलता हुआ एक जनगीत **कखन हरब दुख मोर हे भोलानाथ** की धुन शताब्दियों से लोक संस्कृति में समायी हुई है। महाकवि विद्यापति विरचित यह भगवान् शंकर का प्रणति का पद जनमानस का कण्ठहार बन चुका है।

भगवान् शंकर की प्रणति के पद, महेसवानी एवं नचारी के रूप में आज भी मिथिला के लोकगीतों में अपने प्रखर रूप में हैं और परवर्ती कवियों ने भी महाकवि विद्यापति द्वारा स्थापित इस परम्परा को आगे बढ़ाने की कार्य किया है। प० गोविन्द झा के सम्पादन में मैथिली अकादमी पटना से प्रकाशित विद्यापति गीतावली में सम्पादक ने शिव से सम्बद्ध पदों की संख्या ३५ माना है और उन्हें 'गौरि सहित हर पूरथु आस' इस शीर्षक के अन्तर्गत सम्पादित किया है। यहाँ सभी उद्धरण इसी पुस्तक के द्वितीय संस्करण से लिए गये हैं।

महाकवि विद्यापति के भोलेनाथ एक गृहस्थ हैं। पार्वती इनकी पत्नी हैं। गणेश और कार्तिकेय दो बालक हैं। स्वयं वे भूँग खाकर मतवाले रहते हैं; वसहा (विकृत आकृति वाला बैल) इनकी सवारी है। इन्हें घर परिवार की कोई सुध नहीं। गौरी अकेली बेचारी सी गृहस्थी सँभालती है। घर में कुछ भी नहीं, केवल भूँगघोटना इनके घर की सम्पत्ति है।

विद्यापति के एक पद में भोलानाथ की गौरी इनसे नाचने के लिए हठ करने लगती है। गौरी कहती है कि आज मैंने एक त्योहार है; उत्सव का दिन है। आप नट का वेष धारण करें और डमरू बजायें।

आज भोलानाथ भी बहुत खुश हैं; वे भी नाचकर इस उत्सव के दिन अपनी गौरी को रिझाना चाहते हैं, लेकिन इन्हें चार चिन्ताएँ सता रही हैं-

तोहें जे कहै छह गौरा नाचय हम कोना नाचव हे ।

चारि सोच मोहि होय कि कोन विधि बाँचव हे ।

महादेव को तो सबकी चिन्ता है; इनकी सवारी वसहा तो आखिर इनका अपना ही है। वे इसके लिए भी चिन्तित हैं कि मेरे नाचने पर शिर पर अवस्थित चन्द्रमा से अमृत की बूँद चपकने लगी तो बघम्बर जी उठेगा और वह बाध वसहा को खा जायेगा-

अमिय चुविअ भुमि खसत बघम्बर छापत हे ।

होएत बघम्बर बाध बसह धए खाएत हे ।

यदि वे नाच उठेंगे तो सारी व्यवस्था चौपट हो जायेगी। भगवान् शिव को तो सबकी चिन्ता है। वे तो देवाधिदेव हैं। इनकी पहली चिन्ता है कि नाचने पर शरीर से लिपटे साँप सरक कर चारों ओर फैल जायेंगे और कार्तिकेय का पाला हुआ मोर इन्हें चुन चुन कर खा जायेगा।

सिर सजो ससरत साँप दहो दिस जायत हे ।

कातिक पोसल मजूर एहो धरि खायत हे ।

भगवान् शंकर के शिर पर गंगा विराजमान हैं। यदि भोलेनाथ नाचने लगेंगे तो गंगा छिलक कर पूरी पृथ्वी को डुवो देगी; इसकी हजारों हजार धारा बन जायेगी जिन्हें समेटना फिर असम्भव होगा।

जटा सजो छिलकत गाड़ भूमि भरि छापत हे ।

होएत सहसमुख धार समेटो न जाएत हे ।

इतना ही नहीं इनकी अन्तिम चिन्ता तो यह है कि गले का मुण्डमाल टूट कर गिरेगा और मसानी भूत-प्रेत वैताल सब जग जायेंगे और पार्वती डर के मारे भाग खड़ी होगी तब भला मेरा नृत्य कौन देखेगा!

मुण्डमाल टुटि खसत मसानी जागत हे।

तोहें गौरा जेवह पड़ाइ नाच के देखत हे।।

इस प्रकार, चन्द्रशेखर, गंगाधर, सर्पमाल एवं मुण्डमाल भगवान् शिव जो सम्पूर्ण सृष्टि की चिन्ता रखते हैं, उनका ऐसा काव्यमय वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

विद्यापति के भोलेनाथ जब विवाह करने चलते हैं तो जब इनका स्वरूप देखते ही बनता है। ये बूढ़े भोलेनाथ अपनी सवारी वसहा पर विराजमान हैं भूत, प्रेत, वैताल ये सब वारात है। वसहा टपर टपर चल रहा है तो वारात खटर खटर कर बढ़ रहे हैं; क्योंकि वे तो कंकाल मात्र हैं। ऐसे वर को देखकर भला पार्वती की माता मैना के होश क्यों न उड़े। नारद मुनि ने वर्तुहारी की है तो क्या हुआ। मैना के मन में अपार आक्रोश है नारद के प्रति। वारात द्वार पर आ चुकी है लेकिन मैना किसी भी स्थिति में अपनी सुकुमारी गौरी के लिए ऐसे वर को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। वह वसहा को भगाकर सभी वारातों को लौटाने की बात करती हैं और कन्या पार्वती को लेकर आँगन से भागने की योजना बना रही है। वह नारद को कोस रही है; इनकी दाढ़ी पकड़कर इन्हें घसीटने की बात कर रही है।

इस गीत में कवि ने अलौकिक चरित्र का अद्भुत लौकिक वर्णन किया है। इस आधार पर कुछ विद्वान् समाज में व्याप्त वृद्ध विवाह पर कवि का कटाक्ष माना है; किन्तु यह सर्वथा विचारणीय है। वस्तुतः यह मिथिला की संस्कृति का 'डहकन' है, जिसमें वर पक्ष के लोगों के साथ इसमें संयत स्वर में

हास-परिहास किया जाता है। युवा, सौम्य एवं सर्वगुण सम्पन्न वर को वृद्ध एवं कुरूप कहना हास्य का विभाव हो सकता है। इसी प्रकार शिष्ट एवं सुन्दर वर-यात्रियों के लिए भूत, प्रेत वैताल आदि का रूपक हास्योत्पादक है। यह मिथिला के शिष्ट हास्य का सुन्दर उदाहरण है।

विद्यापति के भोलेनाथ के साथ कवि की तन्मयता उनके पदों में समाहित है। कवि सभी औपचारिकताओं के बन्धन से ऊपर उठकर भगवान् शिव के साथ इतने तन्मय हो चुके हैं कि उन्हें अलौकिक न मान कर लौकिक मान बैठते हैं। अतः विद्यापति के भोलेनाथ साधारण मनुष्य की भाँति डोली भी खेलते हैं। लेकिन उनकी होली दिव्य है। वे विष्णु के साथ होली खेलते हैं। एक ओर विष्णु सिन्दूर लेकर हैं तो भगवान् शिव ने भस्म लेकर पीतम्बर पर लगा दिया है। सन्ध्या, सरस्वती, लक्ष्मी एवं गौरी भी इस दिव्य सिन्दूर और भस्म-क्रीड़ा में मग्न हो चलीं हैं। (पद संख्या : २१)

विद्यापति के भोलेनाथ विवाहित हैं। उनका परिवार है। इसलिए गौरी उन्हें भी बार बार खेती करने के लिए उसकाती है। नही तो घर का खर्च कैसे चले! गौरी उन्हें समझाती है कि—

खटड काटि हर, हरबा बँधाबह,

त्रिसुल तोड़िय करु फाड़े।

वसहा धुरन्धर लए हर जोतिअ

पाटिअ सुरसरि धारे।।

पद सं० २२

भगवान् शिव के हाथों में लकड़ी की लाठी है; लोहे का त्रिशूल है; वसहा है और सिंचाई के लिए तो गंगा ही है। खेती के सभी साधन हैं तब भला खेती क्यों न हो।

भगवान् शिव के रूप का यह मानवीकरण विद्यापति के पदों में भले निखरा हो किन्तु भनिआओं और कुछ गीतों में कवि ने भगवान् को सर्वथा अलौकिक

ओर परात्पर माना है। उपर्युक्त पद सं० २२ की भनिता में तो कवि स्पष्ट कहते हैं कि इस संसार में मुझे जो दुःख देना हो दें लेकिन परलोक में आप अपनी शरण देंगे; इसीलिए मैंने आपकी सेवा की है –
भनई विद्यापति सुनह महेसर

ई जानि केल तुअ सेवा ।

एतए जो बरु होअ से बरु होअओ

ओतए सरन मोहि देवा ।

महान् शिवभक्त विद्यापति के भोलेनाथ सभी प्रकार के दुःखों को हरण करनेवाले हैं। वे यमराज के भय को दूर कर सकते हैं। इसीलिए तो कवि ने उनसे विनती की है-

विद्यापति भन पुरह हमर मन

छाड़ओ जमक तरासे ।

हरह हमर दुख तथिहु तोहर सुख

सब होअ तुअ परआसे । ।

पद सं० : २४

साथ ही उन्होंने एक सम्पूर्ण गीत में जिस आत्म-समर्पण की भावना के साथ भोलेनाथ की विनती की है; तथा जीवन के कष्टों को दूर करते हुए इस अथाह भव-सागर को पार करा देने की प्रार्थना की है –

कखन हरब दुख मोर हे भोलानाथ ।

दुखहि जनम भेल दुखहि जिवन भेल

सपनहुँ सुख नहि मोर ।

एहि भवसागर थाह कतहु नहि

भैरव धरु करुआर ।

भन विद्यापति मोर भोलानाथ गति

करब अन्त मोहि पार । ।

पद संख्या : ३७

T

मिथिला के वैष्णव सन्तों में गोविन्द दास का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। मिथिला में इनके व्यक्तित्व के विषय में मतभेद है। कुछ विद्वान् इन्हें काव्यप्रदीप (मम्मट के काव्यप्रकाश की सुप्रसिद्ध व्याख्या) के रचयिता गोविन्द ठाकुर से अभिन्न मानते हैं तो कुछ विद्वान् के अनुसार ये आनन्द विजय नाटक के कर्ता रामदास के अनुज थे। कुछ विद्वान् इन्हें नलचरित नाटक के कर्ता राजा कंसनारायण के मन्त्री मानते हैं। बहुमत के अनुसार द्वितीय मत मानने पर इनका काल १५७०-१६४० ई० सिद्ध होता है।

ये परम वैष्णव सन्त थे। इनकी रचनाएँ गोविन्ददास-भजनावली के नाम से मैथिली अकादमी से ५० गोविन्द झा के सम्पादन में प्रकाशित है। यहाँ इस भजनावली से राम-भक्ति विषयक पद पर्यवेष्टित है –

जय जय श्रील राम रघुनन्दन जनकसुतारतिकन्त ।

सुर नर वानर खचर निसाचर जसु गुन गाब अनन्त । ।

नव दूर्वादलश्यामल सुन्दर कंज-नयन रनवीर ।

वाम धनुधर जहिन निसित शर जलधि कोटि गम्भीर । ।

श्रीपद पादुक धर भरतानुज चामर छत्र निछोड़ि ।

सिव चतुरानन सनक सनन्दन शतमुख रहु कर जोड़ि । ।

भक्ति आनन्दित मारुतनन्दन चरनकमल ककु सेवा ।

गोविन्ददास हृदय अवधारल हरिनारायण देवा । ।

A

वेदवाणी

अथर्ववेद के तृतीय काण्ड का 30वाँ सूक्त एकता एवं संगठन का सूक्त है। इसमें सात मन्त्र हैं, जिन्हें यहाँ 'धर्मयिण' के प्रबुद्ध पाठकों के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है—

**सहृदयं सांमनस्ययं विद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योऽन्यमभिहृत्य वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥१॥**

परस्पर द्वेष हटाकर सहृदयता एवं सौमनस्य की भावना का विस्तार करता हूँ। जैसे गाय अपने बछड़े से प्रेम करती है, वैसे ही परस्पर एक दूसरे से प्रेम करें।

**अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवति समनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥२॥**

पुत्र पिता के संकल्प का पालन करे; माता की आज्ञा का बहन करे और पत्नी अपने पति से शान्त एवं मधुर वाणी कहे।

**मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥३॥**

भाई भाई से द्वेष न करें और इसी प्रकार बहन बहन से डाह न करें। आप सब एकमत और समान-व्रत होकर भद्र वचन बोलें।

**येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृष्णो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥४॥**

जिस मन्त्र के प्रभाव से देवता अन्यथा नहीं सोचते; परस्पर द्वेष नहीं करते हैं, उस सांमनस्य मन्त्र का प्रयोग हम तुम्हारे घर के पुरुषों के लिए करते हैं।

**ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्यै वत्सु वदन्त एत सधीचीनान्वः संमनस्कृणोमि ॥५॥**

तुम छोटे-बड़े का ध्यान रखते हुए तथा व्यवहार करते हुए, समान चित रखते हुए, एक समान कार्य करते हुए, अलग नहीं रहो। तुम परस्पर सुन्दर एवं प्रिय वाणी बोलते हुए आओ। हे मनुष्यो! मैं भी तुमको एक समान कार्यों में प्रवृत्त करता हूँ।

**समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥६॥**

एक ही कूप का पानी पियो; अन्न में एक साथ हिस्सा पाओ; एक ही धागा में सबको मैं पिरोता हूँ। जैसे चक्के की सभी तीलियाँ एक केन्द्र के साथ जुड़ी होती हैं, उसी तरह एक ही लक्ष्य से तुम सब अग्नि की पूजा करो।

**सधीचीनान्वः संमनस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्संवनेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥७॥**

तुम सबको एक कार्य में प्रवृत्त और एक मत से सम्पन्न करता हूँ; एक प्रकार का अन्न खाने वाला बनाता हूँ। इसी वशीकरण कर्म के द्वारा तुम सबको मैं वश में करता हूँ। स्वर्ग में स्थित अजर-अमर करनेवाले, एक मत से अमृत की रक्षा करनेवाले इन्द्र आज देवता जैसे सुन्दर मनवाले होते हैं, इसी प्रकार सायं तथा प्रातःकाल में तुम्हारा मन सुन्दर रहे।

महावीर मन्दिर प्रकाशन माला के नये पुष्प



हनुमद्-बाहुकम्

गोस्वामी तुलसीदास कृत हनुमान-बाहुक हिन्दी काव्य-जगत् में श्रेष्ठ भक्ति काव्य है। इसके ४४ पदों में अपनी असह्य बाहु-पीड़ा से मुक्ति के लिए तुलसीदासजी ने पवन-पुत्र हनुमान् से मार्मिक प्रार्थना की है। गोस्वामीजी ने इसकी रचना बनारस में गंगा के तट पर की थी। अत्यन्त हर्ष का विषय है कि इसी पुण्यसलिला गंगा के तट पर सारस्वत साधक पं० केदारनाथ मिश्र त्रिपाठी ने इस श्रेष्ठ स्तुति का सुरभारतीय काव्यानुवाद किया है।

पण्डित-प्रवर त्रिपाठीजी सुरभारती के प्राचीन परम्परा के विद्वान् हैं। दर्शनशास्त्र के मर्मज्ञ के रूप में इन्होंने वकुलहर संस्कृत कालेज, चम्पारण (१९४३-१९५५),

राजकीय संस्कृत कालेज, भागलपुर (१९५५-१९६७), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (१९६७-१९८१ तक) इनकी ख्याति रही है। पवनपुत्र हनुमान् के प्रति इनकी असीम भक्ति का यह प्रसाद है कि दर्शन की गूढ़ गुत्थियों के स्थान पर इनके काव्यों में सरल भक्ति की स्वर-सरिता प्रवाहित हुई है। प्रस्तुत काव्यानुवाद में कवि ने अवधी से अनुवाद करते समय दोनों भाषाओं की प्रकृति एवं प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए एक ओर संस्कृत भाषा के स्वाभाविक माधुर्य को सुरक्षित रखा है, तो दूसरी ओर मूल अवधी में निहित परिवेश एवं कथन की सूक्ष्मता पर विकृति की छाया नहीं पड़ने दी है, भलें इसके लिए उन्हें संस्कृत के अनेक छन्दों का प्रयोग क्यों न करना पड़े।

ऐसी महनीय कृति का प्रकाशन महावीर मन्दिर प्रकाशन ग्रन्थमाला के वीसवें पुष्प के रूप में किया गया है। इसका विमोचन श्रावणी-पूर्णिमा के दिन महावीर मन्दिर परिसर में आयोजित संस्कृत-दिवस समारोह में न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में किया गया है।

पृष्ठ सं० : ५६

मूल्य : १० रु०

प्रथम संस्करण : २००५

श्रीदुर्गासप्तशती

शक्ति-पूजन की परम्परा में श्रीदुर्गासप्तशती का अनन्य स्थान है। यद्यपि यह दुर्गासप्तशती मार्कण्डेय-पुराण का अंश है; किन्तु यह गीता के समान ही अपने आकर-ग्रन्थ से पृथक् अस्तित्व बना चुका है। इसके सात सौ मन्त्रों का पारायण, वाचन और जप सदियों से कार्यसिद्धि एवं साधना के लिए होता आया है। महावीर मन्दिर ने इसे संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ पाठकों के लिए भी सुगम बनाने के लिए इसके मूल श्लोकों का पदच्छेद (प्रत्येक शब्द को अलग अलग करना), शब्दार्थ, हिन्दी अनुवाद एवं विवेचन के साथ प्रकाशन-माला के २१वें पुष्प के रूप में प्रकाशित किया है। इससे जहाँ एक ओर असंस्कृतज्ञ के द्वारा भी इस के पाठ को अत्यन्त सुगम बना दिया है, वहीं संस्कृतज्ञों के लिए भी पाठ के समय ही अर्थानुसन्धान की गति बढ़ाने में सुविधा प्रदान की है। पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाने के लिए इस प्रकाशन में भगवती दुर्गा की सबसे प्राचीन उपलब्ध पूजा-पद्धति का भी संकलन किया गया है, जिसे बौधायन गृह्यसूत्र से लिया है। यह विधि प्रामाणिक होने के साथ-साथ कर्मकाण्ड की जटिलता से दूर होने के कारण श्रद्धालुओं द्वारा प्रतिदिन घर में भी करने योग्य है। श्रद्धालुओं के लिए यह उपहार यहाँ प्रस्तुत किया गया है। साथ ही रामकृष्ण कृत पद्य-पुष्पाञ्जलि, शंकराचार्य कृत देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र, अम्बाष्टक आदि महत्त्वपूर्ण स्तोत्रों का भी संकलन किया गया है।

पृष्ठ सं० : ३६८

मूल्य : २५ रु०

प्रथम संस्करण २००५ ई०

कैंसर के कुछ लक्षण एवं बचाव के उपाय

'कैंसर' सुनने में तो बहुत ही भयावह लगता है और मैं कहूँगा कि यह बीमारी अच्छी नहीं है, लेकिन कैंसर-जैसी बीमारी में कुछ खास बात हैं, कि कुछ कैंसर को होने से रोजा जा सकता है, कुछ को बिलकुल ठीक किया जा सकता है; वशतें कि रोगी बीमारी की शुरुआत में आएँ। कुछ की चिकित्सा कर उन्हें शुरू होने से लेकर यह दिखाई पड़ने लगे इस बीच एक अच्छा अन्तराल होता है। इस समय का सही उपयोग किया जाए तो ४० प्रतिशत कैंसर रोगी को पूरी तरह ठीक किया जा सकता है। जरूरत है लोगों को जानने की। वैसे रोगियों के लक्षण हैं, जो इस रोग को इंगित करते हैं। इस की पूरी तरह जाँच करा लेनी चाहिए; क्योंकि यह कैंसर भी हो सकता है। चूँकि कैंसर शरीर के सारे अंगों को प्रभावित करता है, अतः मैं हर अंग के कुछ-कुछ लक्षण के बारे में जानकारी देता हूँ।

- (१) **बच्चेदानी का कैंसर**— औरतों में यह सबसे ज्यादा पाया जानेवाला कैंसर है। औरतों में करीब ३० प्रतिशत से ज्यादा मरीज इसी बीमारी के आते हैं। यदि बच्चेदानी से गाढ़ा उजला स्राव होने लगे, कभी-कभी मासिक के बीच में भी खून आने लगे, या मोनोपाउज होने के बाद भी यदि कभी-कभी बच्चेदानी से खून आने लगे, सहवास के बाद गुप्तांग से खून आने लगे—ये सभी कैंसर के लक्षण हो सकते हैं इसलिए तुरत ही डाक्टर से सलाह लेनी चाहिए और पॉप समेयर जाँच करवानी चाहिए। यह बहुत आसान जाँच है। इससे यह पता चल जाएगा कि कैंसर हुआ है अथवा नहीं।
- (२) **मुँह का कैंसर**— यह मर्दों में ज्यादा तथा औरतों में कम पाया जाता है। यह तम्बाकू या तम्बाकू से बनी हुई चीजों के सेवन करने से ज्यादा होता है। जैसे ही मुँह के अन्दर झिल्ली के रंग में परिवर्तन होने लगे, उजला परत ऊपर आने लगे, कोई घाव बन जाए जो छूट नहीं रहा हो तथा कोई उभार या ट्यूमर दिखाई पड़ने लगे तो तुरन्त डाक्टर से सलाह लेनी चाहिए। यदि दाँत बिना बजह हिलने लगे या ढीला होने लगे तो भी डाक्टर से इसे दिखा लेना चाहिए। यह कैंसर भी हो सकता है।
- (३) **गिल्टी का कैंसर**— यदि गिल्टी शरीर के किसी भी हिस्से में बढ़ने लगे जो छूट नहीं रहा हो तो इसकी जाँच 'एफ०एन०ए०सी०' बायोप्सी के द्वारा करा लेने से तुरन्त पता चल जाता है कि यह कैंसर से है या किसी दूसरी बीमारी से।
- (४) **पेशाब की थैली का कैंसर**— यदि पेशाब के साथ खून आने लगे और वह भी बिना दर्द के तो अधिक सम्भावना है कि कैंसर भी हो सकता है, इसे तुरन्त जाँच करवानी चाहिए।
- (५) **प्रोस्टेट का कैंसर**— यदि पेशाब ज्यादा होने लगे, या रुक-रुककर होने लगे, पेशाब करने के बाद भी लगे कि पेशाब लगा हुआ है और ये सारी चीजें यदि ५०-६० वर्ष की उम्र के ऊपर के लोगों में है तो प्रोस्टेट कैंसर हो भी सकता है। पेट के निचले हिस्से में उभार होने लगे तो भी उसकी जाँच करानी चाहिए। 'अल्ट्रासाउण्ड' तथा खून की 'पी०एस०ए०' जाँच से पता चल जाता है कि कैंसर है अथवा नहीं।
- (६) **गॉल ब्लाडर का कैंसर**— यदि गाल ब्लाडर में पथरी हो और बराबर वहाँ पर दर्द हो रहा हो तथा पीलिया रोग का प्रभाव भी मरीज पर आ रहा हो तो तुरन्त इसकी जाँच करानी चाहिए। अल्ट्रासाउण्ड से पता चल जाता है कि कोई कैंसर का ट्यूमर है अथवा नहीं।
- (७) **आँत का कैंसर**— पैखाना के रास्ते यदि खून का आना जारी हो और यह पहले से हमेशा बढ़ता जा रहा हो तो यह कैंसर भी हो सकता है।
- (८) यदि खाने में निगलने में कठिनाई हो रहा हो, आवाज में बदलाव हो रहा हो या इलाज के बाद भी नहीं ठीक हो रहा हो तो कैंसर की जाँच करानी चाहिए।
- (९) 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' द्वारा आम आदमियों के लिए कैंसर के कुछ लक्षण बताए गए हैं—

'पेशाब तथा पैखाना जाने की आदतों में परिवर्तन।	'घाव, जो ठीक नहीं हो रहा हो।
'असामयिक रक्त का निकलना तथा अन्य स्राव होना।	'स्तन में गाँठ महसूस होना।
'खाना पचने तथा निगलने में कठिनाई होना।	'मससे के रंग तथा आकार में परिवर्तन होना।
'खाँसी होना तथा आवाज बन्द होना।	

ये सभी लक्षण हैं, जो कैंसर को इंगित करते हैं। लेकिन मैं कहूँगा कि लक्षण आने पर ही क्यों, आजकल बहुत सारे अस्पतालों में कैंसर डिटेक्शन सेंटर खुल गए हैं, जहाँ पर यदि कोई स्वस्थ आदमी भी चाहे तो जाँच करा सकता है, जिन्हें ये लक्षण नहीं हैं। क्योंकि आज ऐसी भी जाँच आ गई है जिससे कैंसर का पता चल जाता है, इसलिए साल में एक बार स्वस्थ व्यक्ति को भी इन सेंटरों पर आकर अपनी जाँच पूरी तरह से अवश्य करा लेनी चाहिए। याद रखें, कैंसर की चिकित्सा में समय का बहुत महत्व है, बीमारी का पता शुरुआत में चले तो रोग के ठीक होने के आसार भी उतने ही अधिक होते हैं।

—महावीर कैंसर संस्थान के सौजन्य से